

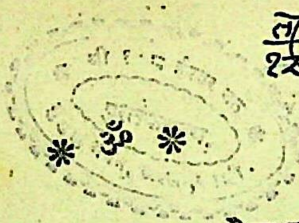
* अध्यात्म निरूपण योग रहस्य *



इस अमूल्य के पुनर्संस्करण के लिये

मूल्य १।)

कमला प्रेस, दोहरीघाट



* ॐ *

* अथ अध्यात्म निरुपण योग रहस्य *



लेखकः- श्री शम्भूनाथ-श्री गुरु स्वामी रामस्नेही जी से प्राप्त कर प्रकाशित किये ।

स्थान पत्रालय नीबी दूबे (गोरखपुर)

इस के सम्पादक
जो महाशय अक्षर मात्रा भाषा का परिवर्तन करें अति श्रेय है।
किन्तु भावार्थ को त्रुटी किंचित मात्र न करें।

॥ श्री गुरुभ्ये नमः ॥

भूमिका -

इस पुस्तक में सत्तावन प्रश्न हैं अपने ज्ञान स्वरूप गुरु के प्रति निवेदन से प्राप्त किया उस प्रश्न प्रश्नोत्तर का समाधान पढ़ने से अविद्या रूप भ्रम का अभाव कैसे प्रतीत है. जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार। अतः अनुभव से पठन करने योग्य है।

विषय सूची

"अथ अध्यात्म निरूपण योगरहस्य"

प्रार्थना

हे भगवन धन्य है आपकी कृपा और अकृपा दोनों को नमस्कार है। अर्थात् जैसे सूर्य का प्रकाश छाया विषें भिन्न उसके असंग से भिन्न प्रतीत है तथा 'अ' की संधि क ख इत्यादि विषें भिन्न उन अक्षरों के असङ्ग से भिन्न प्रतीत है वैसे आपका प्रकाश गुण सहित माया विषें भिन्न और गुण रहित अमाया विषें भिन्न प्रतीत है, सो एक ही दो भेद से, जैसे किसी का भेष महासाधु उसका कार्य महा ठग का, वैसे अमाया से कृपा और माया से अकृपा है, एक धर्म रूप निर्बंधन एक अधर्म रूप बन्धन है। आप समदर्शी हैं जिससे कृपा अकृपा सबों के प्रति भ्रमण करती रहती हैं, जहाँ कृपा अचल वहां से अकृपा हट जाती है, जहां अकृपा अचल वहाँ से कृपा हट जाती है। हितोपदेश मान लेना कृपा की स्थिति है न मानना अकृपा की स्थिति है। जैसे बाल्मीकि, तुलसी इत्यादि के प्रति अनुभूत है। इसी कृपा अकृपा का रूप ज्ञान भूमिका अज्ञान भूमिका है, एक ऊपर को ले जाती एक नीचे को जैसे प्राण गति ऊपर को, अपान गति नीचे को, अर्थात् अपान और अज्ञान और अकृपा इन तीनों का एक स्वभाव है और प्राण और ज्ञान और कृपा इन तीनों का

एक स्वभाव है। यही ज्ञान-अज्ञान, सुर-असुर का विरोध है, परन्तु जैसे प्राण के स्थान अपान जाने से प्राण का रूप बन जाता है और अपान के स्थान प्राण जाने से अपान का रूप बन जाता है, वैसे जहाँ शुभ इच्छा वहीं ज्ञान भूमिका है और जहाँ अशुभ इच्छा है वहीं अज्ञान भूमिका है, जिससे पंडित को मूर्ख और मूर्ख को पंडित होने में विलम्ब नहीं होता है, इसी कारण सर्वत्र बन्धन-निबन्धन है, जैसे जहँ गुण रहित वहीं मोक्ष और जहँ गुण वहीं बन्ध है। अतः जैसे गुण-अगुण की समानता विज्ञान है वैसे कर्ता-अकर्ता की समानता प्रधान है, इससे हे सर्वरूप नमस्कार है। किन्तु कृपा मूल है—इसका मूल उपदेश, सो सत्संग तथा गुरु करके सिद्ध है। परन्तु जिन पर विश्वास है उनका मिलना कठिन है, अन्य पर विश्वास नहीं। अतः उन महात्माओं का ग्रन्थ पढ़ना श्रेय है। गुण प्रकट अवगुण त्याग—तीनों भेद का सत्संग समान है, जैसे तीनों भेद से गुरु, अर्थात सबों का प्रधान गुरु 'श्री' जिसके बिना सब असमर्थ। इस करके सुगम से सर्वस्व सिद्ध है, ऐसे ही गुरु सत्त्व गुण से उत्तम हैं। किन्तु वाल्मीकि के प्रति सात ऋषि और बलि के प्रति शुक्राचार्य—ऐसे गुरु रजोगुण हैं। अर्थात्, महाऋषियों ने सोचा कि दुष्ट को मंत्र का उपदेश अनुचित है—परन्तु शरण आए की रक्षा न हो तब भी अनुचित है, इससे मरा मरा का उपदेश निश्चित है। ऐसे ही जहाँ बलि

राजा तीन पग दान देना निश्चित किया वहाँ शुक्राचार्य भी सोचा–जिसमें ज्ञान अथवा भक्ति नहीं है सो कर्म बंधन है, अर्थात् जिस ज्ञान से कर्म क्षय होता सो भी बलि में नहीं, जानने की चेष्टा भी नहीं करता है, चेष्ठा बिना उपदेश भो अनुचित है, हरि विषें आत्म निवेदन भी नहीं करता है जो धर्म कर्म का समर्पण है, शिष्य बंधन होने से गुरु को भी भय है, इससे शुक्राचार्य श्राप द्वारा सिद्ध किये हे बलि तुम्हारा सर्वस्व क्षय हो । ऐसही जहाँ बंधन निवन्धन का विचार नहीं है सो गुरु तमोगुण हैं । परन्तु जहाँ गुण-अगुण का बोध है वहां तीनों भेद के गुरु समान हैं। ऐसे महागुरु का चरण विष्णु रूप कच्छप के समान अचल करने योग्य है। अर्थात् यद्यपि सुर-असुर एकत्र हो समुद्र मथने को उद्यत भये, मन्दराचल को मथानी, वासुकी नाग को रस्सी बना कर दोनों ओर से मथने लगे, जब पर्वत नीचे जाने लगा तब विष्णु भगवान कच्छप बन पींठपर धारण किये, अतः गुरु का चरण प्रथम अचल करने योग्य है, ज्ञानेन्द्रियाँ देव गण–कर्मेन्द्रिया राक्षस गण मन्दर रूपी मन, वासुकि रूपी बुद्धि–म शब्द का पौरुप देव गण को–र शब्द राक्षस गण को–अ के सन्धि का पौरुप अपने विषें होते ही विचार उदय हैं जैसे मरा-मरा का सीधे राम । इस यत्न से सातों को एक ही बार मथने में सुगम से सुखप्रद है वहां सर्वस्व का कोप प्राप्त करने योग्य है। अतः हे महागुरु यत्न सिद्ध साधक को

आप ही परम सहायक हैं आपको नमस्कार है।

प्रश्न १—हे गुरुजी योग क्या है। जिससे योगी सर्वोत्तम है।

उत्तर—यद्यपि युक्त संज्ञा योग—जैसे चित्त को युक्त करना, परन्तु व्रत इत्यादि छोटे-बड़े सब योग हैं, जैसे छोटी-बड़ी नदी अनेक हैं। नदी पर्वत से, योग वेद रूपी पर्वत से। नदी समुद्र के प्रति, योग आत्मा के प्रति। समुद्र के प्रति से नदी की उल्टी गति नहीं, आत्मा के प्रति से योग की उल्टी गति नहीं। नदियों में गंगा, जमुना, सरस्वती, त्रिवेणी रूप—योगों में कर्म ज्ञान भक्ति त्रिवेणी रूप हैं। समुद्र के प्रति उल्टी-सीधी नदी सब समान हैं, आत्मा के प्रति उल्टे-सीधे सब योग समान हैं। अतः अक्षयवट रूपी धर्म, गङ्गा रूपी भक्ति, जमुना रूपी कर्म, सरस्वती रूपी ज्ञान, विन्ध्यवासिनी रूप कुण्डलिनी शक्ति समुद्र रूपी आत्मा अनुभव करने योग्य है।

प्रश्न २—हे गुरुजी इसे क्रम-क्रम से कहिए जिसे हम भी समझ जायँ, नदी सुगम योग कठिन, समानता कैसे, नदियों का आदि-अन्त प्रगट है, इसका कैसे है, धर्म क्या है, आत्मा क्या है, जहां योग सब अस्त हैं।

उत्तर—चतुरों को योग सुगम, मूर्खों को नदी सुगम है, अर्थात शरीर के असमर्थ में नदी कठिन, योग सर्व काल सुगम है, दोनों की एकता समानता है। मुक्त होने की चेष्टा

स्वधर्म है मुक्त स्वरूप अचल धर्म है अन्यथा अधर्म है जैसे कामना युक्त कर्म कुयोग और कामना विना निश्काम योग है, मानो वही शुद्ध पथिक हैं। गुण रहित जीव वही शिव आत्मा पुरुष है किन्तु गुण रूप प्रकृति जो पंचतत्त्व से शरीर है सो स्त्री वर्ग है, जिसमें छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष ब्रह्मा शिव इत्यादि अपने-अपने आत्मा में परायण रहते हैं, यही अपना स्वरूप ज्ञान है, इसी का नाम प्रकृति पुरुष अर्ध नारीश्वर है, मानो नाम रूप से रहित आधा भाग पुरुष और नाम रूप से आधा भाग स्त्री का, यही सर्वोत्तम आद्य पद है, इसी का नाम माया जीव, आत्मा भक्ति है, तथा गुण मयी माया और गुण रहित अमाया, काष्ठ के समान गुण रूप और अग्नि के समान आत्मा है। मानो कार्य रूप ब्रह्मांड का यही कारण रूप है, सर्वकाल निर्विकार है किन्तु गुण करके अन्य प्रतीत होता है, जैसे अक्षरों विषें सन्धि, परन्तु असङ्ग से, अ तथा सन्धि एक हैं, जैसे घट के अभाव में घटाकाश महाकाश एक हैं। वही सन्धि स्वरूप, जीव ब्रह्म, धर्म मोक्ष, ज्ञान भक्ति की एकता है, जैसे ब्रह्मांड के अभाव में अक्षयवट और ब्रह्म की स्थिति, परन्तु विवेक का सिद्धान्त अनुभव के योग्य है, अर्थात नाम रूप से रहित अक्षयवट और ब्रह्म का सिद्धान्त एक है, जैसे बोध मात्र तुरिया, सिद्धान्त तुरिया तीत है। इसी को समानता, विषमता कहा जाता है, अर्थात जहाँ आत्मा अनात्मा परात्मा—तीन भेद हैं, जैसे घटाकाश

प्रति बिम्बाकाश महाकाश है, वहाँ दो के अभाव में एक शेष है उसे विषमता रूप निर्वाण कहा जाता है। परंतु कार्य ही बंधन वही अनात्मा है, इस अनात्मा के अभाव में आत्मा परात्मा की एकता वही समानता रूप निर्वाण है। अतः अपने आत्मा में सावधान होना श्रेय है, जैसे अपने गुरु के प्रति सर्वस्व सिद्ध होने से गुरु के गुरु प्रति जाना नहीं बनता है। इसी स्वरूप ज्ञान को सबों के कल्याण हेतु ब्रह्माजी निरधारित किये हैं। अर्थात् यज्ञादिक कर्मों को उपदेश करके विचार किये—कर्म ही बंधन हम इसी का विस्तार किये हैं, अतः निर्बंधन रूप ज्ञान को सिद्ध किये। इसी को सबों के कल्याण हेतु शिवजी भी यत्न सिद्ध से अपने ललाट में, धारण किये, शिव स्वरूप विश्व है इससे सो सबों के प्रति सिद्ध है जैसे ओम्कार के ललाट में; उसी के ऊपर स्त्रियों करके बिन्दु-पुरुषों करके तिलक होता है, उसका मर्म जानने से जल ही का तिलक शोभा है— जैसे कुब्जा द्वारा कृष्ण के ललाट में, निश्चय बिना जड़ता त्रिपें जड़ता का लेपन है— जैसे कुब्जा द्वारा कंश के ललाट में। इसी का भावार्थ गीता में स्पष्ट है, सर्वाणींद्रिय कर्माणि प्राण कर्माणि चापरे, आत्म संयम योगाग्नौ जुह्वति ज्ञान दीपिते। अर्थात् इसे निश्चय करना वही संयम है-- समानता रूप की स्थिति वह योगाग्नि है— विषमता रूप की स्थिति वह ज्ञान दीप्ति है जो ब्रह्मा शिव दोनों का सिद्धान्त है, इन्द्रिय प्राण मन इत्यादि गुणों का

कर्म आत्मा के प्रति हवन है। तथा स्पर्शान्कृत्वा वहिर्वाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः, प्राणपानौ समौ कृत्वा नाशाभ्यंतर चारिणौ। अर्थात्, शब्द स्पर्श रूप रसगंधादि विषयों को त्याग कर मुख नाशिका नेत्र जो त्रिकुटी है–इसके ऊपर भौहों के मध्य नेत्र करके अन्यत्र से रहित–नाशिका के भीतर जो प्राण अपान संचार करते हैं इनको शम करे। नाशिका का अग्र वही भौंहों ललाट दोनों स्पष्ट है। इसी को और भी दृढ़ किया जाता है, ललाट में आज्ञा चक्र जो दो दल का है उस पर दो अक्षर "हः क्षः" क्षय अक्षय दोनों भाव से हैं, इनके अधिष्ठाता शिव शक्ति हैं। अतः दोनों को निश्चय करना समानता सो अक्षय है किन्तु एक को निश्चय करना सो विषमता रूप क्षय है, इसी विषमता को तुरीयातीत तथा विदेह कहा जाता है, इसी विदेह मुक्ति में अहं त्वं- दूर समीप-सत असत- उदय अस्त- यह चारों भेद नहीं बनता है, अर्थात् अहं त्वं यही द्वैत है, इस अहं के अभाव में एक जो शेष है उसे दूर अथवा समीप इत्यादि बनाने को अन्य नहीं है। जैसे ब्रह्म के सिवाय अन्य मिथ्या है तब भी अद्वैत है यदि सब ब्रह्म है तब भी अद्वैत है। अर्थात् कर्म का रूप प्राण चिन्ता जिस करके योगाग्नि और ज्ञान का रूप आत्म चिन्ता जिस करके ज्ञान-दीप्ति, दोनों का सिद्धांत एक है, यद्यपि विषमता से पृथक–समानता से एकत्र- जैसे रावण से पृथक हनुमान से एकत्र, परंतु बंधन जो कार्य है उसके अभाव में एक रूप

सिद्ध है, मानो इसी के बोध निमित्त च ञ ज्ञ है, अर्थात् च के प्रति ञ मानो दोनों हाथ जोड़ कर खड़ा है—जैसे रावण के प्रति विभीषण कि अपना स्वभाव त्याग कर ज्ञ से एकता करो, न मानने से ञ उस ज्ञ से एकता कर लिया, यही जड़ता रहित संधि स्वरूप की एकता छठवाँ निर्वाण है जैसे "प"।

अब यहाँ गंगा जमुना सरस्वती—कर्म ज्ञान भक्ति इन त्रिवेणियों का आदि मध्य अन्त अनुभव के योग्य है। अर्थात् कर्म के आदि में एक कार्य के निश्चय बिना अमिष्ट से क्या करूँ कहाँ चलूँ कौन कार्य करूँ विक्षिप्त अनुभूत है, इस कर्म के मध्यावस्था में एक कार्य का दृढ़ संकल्प होता है, इसके अन्तावस्था में उस कार्य में आसक्त, जैसे जमुना का जम्बूतरु आदि—मध्य अक्षयवट का स्थान—अन्त आद्य पद। वैसे ज्ञान के आदि में मुक्त होऊँ यह अनुभूत होता है, इसके मध्यावस्था में कर्म को अस्त करना यह निश्चित होता है, इसकेअन्तावस्था में पंचभूत सहित इन्द्रियादिक कर्म सब असत प्रतीत होता है जैसे तत्त्व विचार से जगत मिथ्या। तथा सरस्वती का आदि अक्षयवट जहाँ उदय होते ही जमुना आच्छादन कर लीं, जैसे मुक्त होऊँ यह स्वधर्म से उदय होते ही क्या करूँ कहाँ चलूँ यह कर्म आच्छादन कर लेना है, यही कर्म ज्ञान का विरोध है जैसे जमुना सरस्वती का, जहाँ भगीरथ द्वारा गंगा आकर अक्षयवट के स्थान पर में तत्पर हो दोनों का विरोध शांत करके एकता कीं, जैसे विचार

द्वारा भक्ति स्वधर्म के स्थान यत्न में तत्पर हो कर्म ज्ञान का विरोध शांत करके एकता करती है। अर्थात् भक्ति का आदि निष्काम इस करके कर्म का रहना न रहना समान है, वैसे भक्ति के मध्यावस्था में हरि विषें कर्म समर्पण से कर्ता अकर्ता की समानता से दोनों का विरोध शांत है, वैसे भक्ति के अन्तावस्था में आत्म निवेदन से दोनों का विरोध शांत है जिससे तीनों की एकता सिद्ध है। यद्यपि जमुना सरस्वती के अयुक्त से गंगा अज्ञान रूप हैं-जैसे कर्म ज्ञान के अयुक्त से भक्ति अज्ञान रूप है और दोनों के युक्त से दोनों विज्ञान रूप हैं, तथा आदि में पृथक मध्य में पृथक अन्त भी पृथक, जैसे गंगा का आदि विराट का चरण-मध्य अक्षयवट का स्थान-अन्त समुद्र के प्रति, तथा सरस्वती का आदि अक्षयवट-मध्य शिवपुरी-अन्त कपिलदेव के स्थान, जैसे कर्म का अन्तिम आद्य पद-ज्ञान का अन्तिम विदेह-भक्ति का अन्तिम हरि से समानता, परन्तु आत्म स्वरूप के निश्चय से तीनों का सिद्धांत एक है पृथक हों अथवा एकत्र, जैसे हम हमार अज्ञान-न किसी का मैं न कोई हमारा सो ज्ञान-हरि का मैं हरि मेरे सो विज्ञान, परन्तु अनन्य के बोध से तीनों का सिद्धांत एक है। जैसे तुम्हारे चार प्रश्नों का समाधान हुआ अब जो कहना हो उसे कहो।

प्रश्न ३—हे गुरुजी यद्यपि गंगा उस जमुना को अस्त की-जैसे निष्काम भी सकाम को सो कुछ दूर में,

परन्तु जैसे वाल्मीक की इच्छा सो अनिच्छा और बलि का अहं सो अनहं होते ही जड़ता का स्वभाव अस्त है—वैसे आप का समाधान है, अतः सत्य दया दान तप—चारों धर्म के अङ्ग—इसमें आप क्या कहते हैं, तथा तत्त्व विचार से जगत कैसे मिथ्या है इसे भी कहिये।

उत्तर—हे प्रिय धर्म रूप आत्मा जो अगुण करके अनङ्ग है उसका अङ्ग कैसे कौन होता है, यद्यपि गुण रूप शरीर भार्या के समान प्रतीत है जैसे देह विषें वस्त्र, परन्तु सत जो आत्मा है उसे सत्य मानना और असत जो प्रपंच है इसे मिथ्या जानना वही धर्म और धर्मात्मा है, किन्तु इसे उलटा करना वही अधर्म और अधर्मी है, मानो इसी के बोध निमित्त अधर्म की भार्या मिथ्या है। अतः इस धर्म के निश्चय में अचल रहो इस करके सुख सम्पदा सहित सुर समूह की स्थिति गुण पंक्तियों की खानि असत सो शून्य सत सो अचल अनायास आकर उपस्थित होता है, इसी के बोध निमित्त मुक्त रूप से अचल अक्षयवट हैं वैसे ठूंठ काष्ठ अनंग अनुभूत हैं--मानो तत्त्व विचार का स्वरूप हैं। अर्थात् आकाश वायु तेज जल जड़--इन्हीं पाँच तत्व से नाम रूप करके ब्रह्मांड सो जड़ कर के सिद्ध है, इन्हीं द्वारा आकाश रूप अन्तःकरण वायु रूप मन तेज रूप बुद्धि जल रूप चित्त जड़ रूप अहंकार है। आकाश रूप व्यान वायु सब देह में--वायु रूप प्राण हृदय में- तेज रूप समान वायु नाभि में- जल रूप

उदान वायु कंठ में जड़ रूप अपान वायु गुदा में। आकाश रूप श्रवण वायु रूप नाशिका तेज रूप नेत्र जल रूप जीभ जड़ रूप त्वचा-यह ज्ञान इन्द्रिया। आकाश रूप वाणी वायु रूप हाथ तेज रूप चरण जल रूप लिंग जड़ रूप गुदा--यह कर्म इन्द्रिया। शब्द स्पर्श रूप रस गंध--उसी पाँच से यह भी इन्द्रियों का विषय। वायु रूप परा वाणी नाभि में--तेज रूप पश्यंती वाणी हृदय में--जल रूप मध्यमा वाणी कंठ में-जड़ रूप वैखरी वाणी बाहर को। अतः जड़ कर के जड़ सो सब मिथ्या होने ही योग्य है।

प्रश्न ४—हे गुरुजी इस करके मोह का मूल नष्ट भया, परन्तु प्राण अपान कैसे शम होते हैं तथा अपान के प्रति प्राण का हवन और प्राण के प्रति अपान का हवन-तथा दोनों की गति अवरुद्ध और कैसे प्राण के प्रति प्राण का हवन है, इसे भी कहिये।

उत्तर—नाशिका का दाहिना छिद्र बंद से बायें अपान के स्थान प्राण भी है- जैसे सब में रमण करने हार राम उस रावण में भी हैं गुप्त रूप से। यदि बायाँ छिद्र बन्द हो वहाँ भी दाहिने प्राण के स्थान अपान भी है- जैसे राम विषें रावण गुप्त रूप से। अतः हवन और शम दोनों सिद्ध हैं। परन्तु जैसे यत्न विनो निरंतर शम और हवन होता रहता है इसे भी अनुभव करने योग्य है, अर्थात्, चेष्टा बिना शांत रूप से प्राण हृदय में सत्त्व गुण से है जैसे हरि, वैसे चित्त भी

है जैसे हरि के प्रति थी। चेष्टा होते ही नाभि में अपान को उदय करके स्थित होता है, मानो नाभि में अपान- हृदय में प्राण-दोनों की स्थिरता वही सन्धि काल प्रथम का कुंभक है जो अवरुद्ध गति। ज्योहीं प्राण ऊपर अपने ललाट स्थान में जाता-ज्योहीं अपान भी नीचे अपने गुदा स्थान में जाता है, वहाँ प्राण अपने अस्त होने के प्रथम कठ स्थान में अपान को उदय कर देता है वैसे नीचे अपान भी अपने अस्त होने के प्रथम लिंग स्थान में प्राण को उदय कर देता है, नीचे भी दोनों की स्थिरता-ऊपर भी दोनों की स्थिरता अवरुद्ध गति सन्धि काल है। ज्योहीं प्राण लिंग स्थान से हृदय स्थान में जाता-त्योहीं अपान भी कंठ स्थान से नाभि विषें स्थित होता है, यहाँ भी प्रथम की भाँति दोनों की स्थिरता अवरुद्ध गति सन्धि काल यही चौथा कुंभक है, अर्थात् एक ऊपर एक नीचे दो मध्य में। नाभि स्थान से अपान जब प्राण के स्थान हृदय में जाता है सो कैसे प्रतीत है जैसे अमावस्या को चन्द्रमा सूर्य से एकता करते हैं, यहीं प्राण विषें प्राण का हवन बनता है, अर्थात् गुण रहित सन्धि प्राणेश्वर है जैसे गुण रहित हरि, यह सन्धि स्वरूप हैं, जैसे गुण रूप प्राण वही गुण रहित अप्राण हैं, चेष्टा से भ्रमण चेष्टा बिना शांत है, गुण बिना अचल है ऐसे गुण करके पूरक कुंभक रेचक भिन्न भिन्न हैं किन्तु गुण रहित सन्धि के प्रति निर्वाण रूप से समान हैं। प्राण अपान

का उदय अस्त वही आठ प्राणायाम है, चार प्राण गति से चार अपान गति से। ललाट में प्राण अस्त—कंठ में अपान उदय—गुदा में अपान अस्त—लिंग स्थान में प्राण उदय-हृदय में प्राण उदय-नाभि में अपान अस्त-नाभि में अपान उदय-हृदय में प्राण अस्त। एक के प्रति एक का हवन-दोनों के प्रति दोनों शम है। अर्थात् अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथा परे, प्राणापान गति रुद्धा प्राणायाम परायणा। अपरे नियता हाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति। अयत्न से उदय अस्त हैं और यत्न से उदय सो अस्त वर्जित और अस्त सो उदय से वर्जित होता है। षट चक्र के अन्तर्गत आठो प्राणायाम हैं। प्राण अपान की गमन शीलता वही रेचक पूरक है। अर्थात् हृदय से नाभि में प्राण का पूरक-नाभि से गुदा में अपान का पूरक-गुदा से लिंग स्थान में अपान का रेचक-लिंग स्थान से हृदय में प्राण का रेचक—हृदय से ललाट में प्राण का रेचक—ललाट से कंठ में प्राण का पूरक—कंठ से नाभि में अपान का पूरक—नाभि से हृदय में अपान का रेचक है। दो रेचक दो पूरक प्राण का और दो रेचक दो पूरक अपान का है। निम्न गति पूरक—उर्ध्व गति रेचक अनुभव के योग्य है। तीन प्राण का चक्र उसका दल कमल-तीन अपान का चक्र उसका दल कुन्द-प्राण सूर्य रूप—अपान चन्द्रमा रूप है परस्पर अपने दल को विकसित उसके दल को संकुचित करते रहते हैं प्राण के चक्र का दल नीचे नाल ऊपर है जिससे यह अपने दल को उठाते हुए ऊपर को जाना

है–अपान के चक्र का दल ऊपर नाल नीचे है जिससे यह यह अपने दल को उठाते हुए नीचे को जाता है। लिंग स्थान हृदय स्थान ललाट स्थान यह तीन प्राण का चक्र है, गुदा स्थान-नाभि स्थान कंठ स्थान यह तीन अपान का चक्र है। गुदा स्थान में मूलाधार चक्र चार दलका है—लिंग स्थान में स्वाधिष्ठान चक्र छव दल का है—नाभि में मणि पूरक चक्र दश दल का हृदय में अनाहत चक्र बारह दल का—कंठ में विशुद्ध चक्र सोलह दल का ललाट में आज्ञा चक्र दो दल का है। इन पचास दलों पर पचास अक्षर हैं शेष दो अक्षर "ॐ और ह्रौं" मानो श्री हरि तथा संधि स्वरूप के स्वभाव से हैं। अर्थात् सहस्र मुख से शेष नाग-सहस्र दल से ब्रंह्म रंध्र-चित्त प्राण के एकता से सहस्रों की ब्रंह्म रूपता होती रहती है—जैसे श्री हरि के एकता से। यद्यपि श्री करके हरि और हरि करके श्री-तथा चित्त गति से प्राण और प्राण गति से चित्त सिद्ध हैं, परन्तु जो ऊपर जाता वही नीचे को—जैसे प्राण ऊपर को वही अपान होकर नीचे को मानो युक्त सो अयुक्त और अयुक्त सो युक्त होता है--दोनों से रहित शांत पद है। जैसे गुण करके सातो में भेद गुण रहित से अभेद हैं, सातो महा पवित्र -जैसे सात महर्षि-देखने में भिन्न-सिद्धांत एक- जिससे सातो समान हैं।

प्रश्न ५—हे गुरुजी इस करके महान भ्रम नष्ट भया-परन्तु अर्ध रेचक पूरक-तथा आभ्यंतर का तथा बाह्य

का कैसे है कृपा सहित इसे भी कहिये।

उत्तर—हे प्रिय हृदय से ललाट में और ललाट से हृदय में-हृदय से लिंग स्थान और लिंग स्थान से हृदय में यह प्राण का अर्ध रेचक पूरक है। नाभि से कंठ में और कंठ से नाभि में-नाभि से गुदा में और गुदा से नाभि में यह अपान का अर्ध रेचक पूरक है | गुदा के नीचे से नीचे जाने में अपान समर्थ है वही अपान के बाहर का पूरक है ललाट के ऊपर से ऊपर प्राण जाने में समर्थ है वही प्राण के बाहर का रेचक है। कंठ स्थान के ऊपर अपान का जाना वर्जित है, उसके ऊपर छठां प्राण का स्थान है। लिंग स्थान के नीचे प्राण का जाना वर्जित है, उसके नीचे अपान का चक्र स्थान है। इसी का महा पंडित अहिरावण जो राम लक्ष्मण को अपान के रेचक द्वारा ऊपर आकाश गर्त में ले गया और प्राण के पूरक से नीचे पाताल गर्त में ले गया। हनुमान के श्रम से राम असमर्थ-मन के श्रम से साधक असमर्थ, हनुमान के श्रम रहित से राम समर्थ-मन के श्रम रहित से साधक समर्थ कुंभक के इस पार से उस पार प्राण अपान का आना जाना वही दोनों के आभ्यंतर का रेचक पूरक है। बायें से अपान का निरोध होकर दाहिने से रेचक यथार्थ है किन्तु दाहिने से निरोध बायें रेचक वर्जित है। अतः जिस करके आठो स्थान में प्राण अपान उदय अस्त होते रहते हैं वही गुण रहित संधि चिदात्मा है वही योगियों का प्राण प्रद निर्मल आत्मा है उसी

की उपासना सबों से सिद्ध है, उसमें तुम भी सावधान होकर आत्मपरायण होओ।

प्र० ६–हे गुरु जी ऊपर के चक्र से नीचे के चक्र में जाना सो पूरक है प्राण का अथवा अपान का इसे समझ लिया, परन्तु पाचवें चक्र के ऊपर अपान और दूसरे चक्र के नीचे प्राण कैसे जाते होंगे इसे भी कहिये।

उत्तर–अपने स्थान से अन्यत्र दोनों का आना जाना नहीं बनता है, अतः दूसरे चक्र से प्राण रेचक द्वारा ऊपर जाके अपान का रूपधारण करके नीचे जाता है, वैसे अपान भी पाचवें चक्र से नीचे जाके प्राण का रूपधारण करके ऊपर जाता है, जिससे आकाशचारी सिद्ध ऊपर जाकर नीचे गिरते हैं, न कि अन्य स्थान के समान तथा स्वभाविक पथिक के समान, किन्तु घूम कर दोनों आने जाने में समर्थ हैं। इसी का नाम योगयुक्ति बिना कुयोग बन जात है। जैसे युक्ति बिना गृद्धसंपाती सो पंखहीन भया और वही उपदेशक भया, अर्थात् हे वानर गण पृथ्वी के ऊपर आकाश के प्रथम श्रेणी में कबूतर ऐसे पक्षी जाने में समर्थ हैं उसके ऊपर नहीं दूसरे श्रेणी मे काक ऐसे पक्षी, तीसरे में क्रौंच तथा बटेर ऐसे, चौथे मे बाज ऐसे, पाचवें में हम जैसे गृद्धों की जात, छठवें में हंसों की जात जहाँ सूर्यरूप विवेक का स्थान है, सातवें में गरुड़ ऐसे सुभट जो कर्ता अकर्ता के समानता से सिद्ध है, यद्यपि पांच जड़ता रूप छठवां जड़ता से रहित और सातवां

दोनों करके है, परन्तु सातो स्थान जड़ प्रकृति है जिससे प्राण की अन्तिम नाड़ी शेष का रूप इसी के अतर्गत है इसी के बोध निमित्त विराट जी के दो चरण में नीचे से ऊपर तक सिद्ध है, किन्तु जड़ता रहित आठवाँ है जैसे पंच प्राण से रहित छठवाँ निर्वाण है, इसी पांच करके नीचे से ऊपर तक है जिससे गुण करके भेद गुण रहित से सर्वत्र समान है।

प्र०७-हे गुरु जी आप के युक्ति द्वारा वाक्य को सूर्योदय के समान प्रथम से निश्चित किया हूँ। अतः यद्यपि सो आत्मा रूप धर्म ठुंठ काष्ठ के समान अनंग है परन्तु जैसे यत्न युक्ति से एकता होती है वैसे सत्य दया दान तप से कैसे होती है इसे कहिये।

उत्तर-तुम्हारे समान बुद्धि आत्म स्वरूप को निश्चय करती है, अन्यथा से अन्यत्र भटकती है, उसे प्रतीत होता कि हम तथा जीव कहीं आते जाते हैं, यही महा अज्ञान उन्हें अभिष्ट कियाहै, यदि अहं सो मिथ्या और जीव सो अचल अनुभूत हो तब उनमें अज्ञान कहाँ है किन्तु अज्ञान ही आता जाता है उसी का नाम भावना कल्पना इत्यादि है, यदि ऐसे ही निश्चित करो तब भी मिथ्या को मिथ्या जानने से सत्य सो सत्य है, जैसे अनेक जन्म भया अज्ञान से जीव बंध है उसे मुक्त करने का निश्चय होना वही महान दया है न कि अन्यथा अन्य विषें सो दया है जो महात्माओं करके प्रसिद्ध है वही आत्मघाती है, वही अधर्म है किन्तु उस विषें दया सो धर्मात्मा है वही सर्वस्व का करता है। आत्मा तथा हरि विषें सर्वस्व को समर्पण करना

वही महादान है इस बिना कुदान बन जाता है, जैसे देह और आत्मा की एकता से अज्ञान बन जाता है किन्तु देह के संग से असंग करना वही महा तप है जिससे ज्ञान के समान अन्य तप इत्यादि नहीं है, अतः सो ज्ञान रूप असंग ठुंठ काष्ठ के समान होने ही योग्य है, वैसे तुम भी शांत रूप से स्थित रहो, यही एकता है, परन्तु जड़ सो चेतन नहीं और चेतन सो जड़ नहीं उसी का नाम सिद्धान्त है।

प्र०८—आप के कृपा से अंधकार नष्ट भया, परन्तु अज्ञान गति अपान गति की एकता और ज्ञान गति प्राण गति की एकता कैसे है।

उत्तर—ऊपर कपाल स्थान में जहाँ से अपान वायु गिरने को उद्यत है वही अज्ञान भूमिका का नाम बीज जाग्रत है, वहाँ से नीचे ललाट स्थान में अपान के साथ अज्ञान भूमिका का नाम जाग्रत है, वहाँ से नीचे कंठ स्थान में तीसरी का नाम महा जाग्रत है, उसके नीचे हृदय में चौथी का नाम स्वप्न है, उसके नीचे नाभि में पाचवीं का नाम स्वप्न जाग्रत है, उसके नीचे लिंग स्थान में छठवीं का नाम जाग्रत स्वप्न है, उसके नीचे गुदा स्थान में सातवीं का नाम सुषुप्ति वहीं अपान और अज्ञान भूमिका अंत हैं। इसी गुदा स्थान से ज्ञान भूमिका और प्राण गति ऊपर को चलते हैं, यहीं प्रथम की ज्ञान भूमिका शुभेच्छा है, यहीं प्राण का बीज प्रद है जैसे अंड काष, इसके ऊपर लिंग स्थान में प्राण के साथ

दूसरी ज्ञान भूमिका विचारणा है, इसके ऊपर नाभि में तीसरी तनु मान्शा है, इसके ऊपर हृदय में चौथी सत्वापत्ति है, इसके ऊपर कंठ में पाचवीं असंसक्त मानसा है, इसके ऊपर ललाट में छठीं पदार्थ भावनी है, इसके ऊपर कपाल स्थान में सातवीं तुरीया है, यही सातो स्थान दोनों पक्ष के आने जाने का मार्ग हैं।

प्र० ९—हे गुरु जी अपान गति का नाम गुण समझ लिया परन्तु चक्र और ज्ञान गति का गुण स्वभाव कहिये।

उत्तर- हे प्रिय जैसे सबों का मूल थी मानों वैसे मूलाधार है, अशुभ का अस्त शुभ का उदय इस करके शुभेच्छा है। दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान मानो अपना आधार हैं, सत असत के बिचार का ग्रहण इस करके विचारणा है। तीसरा चक्र मानों मणियों का कोष है इससे मणि पूरक है, तन मन से एकता करना इससे तनु मान्शा है। चौथा चक्र अनाहत मानो मरण से रहित है, सत्व गुण के स्थिति से चौथी सत्वा पत्ति है पाचवाँ चक्र विशुद्ध मानो विशेष शुद्ध है, असत से असंग सत से संग इस करके असंसक्त मान्शा है। छठवां चक्र आज्ञा मानो अज्ञानका अस्त ज्ञानका उदय है, इसी कारण छठवीं पदार्थ भावनी है। सातवां चक्र ब्रह्म का भवन इससे ब्रह्म रंध्र है, इसी कारण सातवीं तुरीया है।

प्र० १०- आप के कृपा से इसे भी समझ लिया

परन्तु यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह आठ कैसे कहाँ हैं इनका भी गुण स्वभाव कहिये।

उत्तर–मूलाधार में अज्ञान भूमिका अस्त ज्ञान भूमिका उदय - जैसे अशुभ को यमराज शुभ को धर्मराज इस करके प्रथम वहाँ यम है। दूसरे चक्र में नियम मानों विचार के नियम से रहना। तीसरे चक्र में आसन सो यद्यपि शिव से चौरासी आसन सिद्ध - प्रत्यक आसन से लक्ष लक्ष योनियों का निर्माण है परन्तु मन करके समता का आसन प्रधान है, तिस पर भी प्राण के युक्ति से अपान यहाँ कुण्डलिनी के स्थान उपस्थित होता है अतः तीसरे स्थान आसनहै। चौथे चक्र में प्राण का निवास है वैसे चेष्ठा बिना प्राणायाम भी करने योग्य है, प्राण का प्रयोग हो अथवा अपान का जैसे युद्धमें राम का प्रयोग अथवा लक्ष्मण का परन्तु हनुमानके समान मन की स्थिति दोनों के प्रति समान है। पाचवें चक्र में प्रत्याहार सो सर्वत्र से मन निवारण किन्तु आत्म चिन्ता प्राण चिन्ता में मन रहे जैसे पाचवीं ज्ञान भूमिका से यहां असत का असङ्ग सत का संग है। छठवें चक्र में धारणा सो पदार्थभावनी के समान आत्मा को धारण करना, अर्थात् ज्ञान गति प्राण गति में एक ही सो है किन्तु भ्रम से गुण रहित सन्धि में गुण रहित हरि में भेद होता है जैसे यहीं भ्रम से शिव शक्ति का मेल नहीं बनता है,जिसे तुम ऐसे इसी छठें चक्र में सन्धि स्वरूप को एक करते हैं यहीं

ललाट स्थान है। सातवें चक्र में ध्यान-सो जैसे अहं और ब्रह्म के एकता में द्वैत है-तथा जगत और ब्रह्म के एकता में द्वैत है वैसे ध्यान और ध्याता में द्वैत है, किन्तु आठवां समाधि विषें मृतक तथा मिथ्या के समान द्वैत का अभाव है जिससे ध्यान और तुरीया एक स्वभाव से और समाधि तथा तुरियातीत एक स्वभाव से हैं, इसी के बोध से समाधि और व्यवहार नीचे तथा ऊपर सर्वत्र समान है।

प्र० ११-हे गुरु जी इस करके सुगम से समझ गया-परन्तु सात चक्रों के प्रति सात समुद्र तथा अधिष्ठाता किसके कौन हैं।

उत्तर-मानो समुद्र को तर जाय उसे शूर नहीं मानता हूँ-किन्तु इन चक्रों को बुद्धि से तर जाय सो शूरवीर है, जैसे संसार को पराजित करे सो शूर नहीं किन्तु अहं को अनहं करै सो महावीर है। वैसे अधिष्ठाता सर्वत्र हैं परन्तु मुख्य अनुभव के योग्य हैं। मूलाधार में ब्रह्मा चार वेद तथा गणेश-मानो चार दल इसी कारण है वहीं चार समुद्र है। दूसरा चक्र छव दल का-षटमुख षटशास्त्र षटविचार वहीं क्षीर सागर है। तीसरा दस दल का वहाँ चेतन शक्ति मानो दशो दिशा के ऐश्वर्य से सम्पन्न है जिससे मणि पूरक इसका नाम है वहीं दधि समुद्र है। चौथा चक्र द्वादश दल का वहां सूर्य और हरि हैं जिससे द्वादश कला की स्थिति है वहीं मधु समुद्र है। पांचवां चक्र षोडश दल का-मानो अज्ञान से

सोलह विकार वहीं से उदय हैं वहीं मद्य समुद्र है जिससे तीसरी अज्ञान भूमिका महा जाग्रत है—जो पांचवीं ज्ञान भूमिका से शांत होते हैं, जिससे इसका नाम विशुद्ध है. यहीं चन्द्रमा के पूर्ण कला की स्थिति है। छठवां चक्र दो दल का इसके अधिष्ठाता शिव शक्ति हैं वहीं ईखरस का समुद्र और हः क्षः से समानता विषमता दोनों भाव सिद्ध है। सातवाँ सहस्र दल का वहां स्वच्छ जल समुद्र है यहाँ जैसे ब्रह्म रूपता होती रहती है वैसे अपान गति गिरती रहती है, अर्थात् अहंकार सहित चित्त प्राण चक्र इत्यादि सब प्रकांत स्वरूप जड़ हैं सो जड़ ही ब्रह्म का भौन है जैसे समुद्र का जड़ रूप तट निवास है, जो सबको अनुभूत है गृह के अभाव में महेश्वर को ठौर कहाँ है, वहीं आठवां समाधि महेश्वर का रूप है, अतः उस गृह शून्य महेश्वर को सर्वत्र समान होने ही योग्य हैं।

प्र० १२--हे गुरुजी इस करके अपर जो अपार भ्रम है सो सब नष्ट भया--परन्तु कहाँ विन्ध्यवासिनी और कहाँ कुण्डलिनी शक्ति इन दोनों की एकता भी कहिए।

उत्तर--हे प्रिय प्रथम श्री के समान कामधेनु को हरि के समान कल्प वृक्ष को--नंदिनी गौ के समान विन्ध्य-वासिनी और कुण्डलिनी को--दिलीप के समान साधक को निश्चित करने योग्य है। अर्थात् जहां श्री की उपासना विस्मरण है जैसे कामधेनु का विस्मरण दिलीप को वहाँ

विन्ध्यवासिनी और कुण्डलिनी के प्रसन्नता से सर्वस्व की प्राप्ति होती है जैसे नंदिनी के प्रसन्नता से दिलीप को। योगियों का आधार प्राणप्रद दोनों हैं जिससे दोनों समान हैं। भेद अभेद कैसे प्रतीत है जैसे ज्ञानेन्द्रियों में तेज रूप नेत्र और कर्मेन्द्रियों में तेज रूप चरण है, हरि के नेत्र से सरजू और हरि के चरण से गङ्गा हैं, सरजू सन्यास रूप-गङ्गा साधु रूप-सन्यास अनम्र जैसे नेत्र ऊपर, साधू नम्र जैसे चरण नीचे है, सन्यास गुण रहित और साधु सत्व गुण से हैं, यद्यपि साधु सत्व गुण से प्रधान हैं परन्तु इनके अधिष्ठाता जो विष्णु भगवान हैं सो गुण अगुण के समानता से प्रधान हैं न कि केवल गुण युक्त से, इसी कारण गङ्गा गुण रहित निर्वाण को सिद्ध करके सरजू से एकता की, यहाँ दोनों समान हैं, जैसे इस करके साधु और सन्यास समान हैं, ऐसे ही विन्ध्यवासिनी और कुण्डलिनी समान हैं, साधक को दोनों से आठ नव सुख प्रद है, अर्थात् यत्न विषें आठ गुण से अष्ट सिद्धी और अयत्न विषें नव गुण से नवनिधि, सर्वस्व की प्राप्ति दोनों से है अर्थात् मुक्ति भुक्ति। विन्ध्य-वासिनी के स्थान साधु रूप गङ्गा का वेग प्रबल-कुण्डलिनी के स्थान गङ्गा रूप साधु का वेग प्रबल है, नीचे तथा ऊपर को मुख करने में दोनों महा चतुर हैं। अर्थात् जिस समय योगमाया कंश के हाथ में है सो कन्या रूप कुछ स्थूल है, जैसे दूसरे चक्र को प्राण, कंश के हाथ से छूटते समय कुछ

सूक्ष्म हो गई, जैसे दूसरे से चौथे चक्रमें प्राण, इसके पश्चात कुछदूर में और सूक्ष्म भई, जैसे चौथे चक्र से कुछ ऊपर प्राण, चौथे स्थान की योगमाया आकाश के समान सूक्ष्म है, जैसे छठवें चक्र में प्राण आकाश रूप से प्रतीत है, आकाश तक योगमाया का चार भेद और छठें चक्र तक प्राण का चार भेद अनुभव करने योग्य है। उस आकाश से अपने स्थान विन्ध्यगिरि की ओर योगमाया चलने को उद्यत भई, जैसे छठें चक्र में प्राण अस्त होकर अपान रूप से मूलाधार की ओर चलता है, आकाश से पर्वत तक स्थूल रूप में भी चार भेद है, जैसे मूलाधार तक चार भेद अपान का भी है, पर्वत में पूर्णरूप उसका-मूलाधार में पूर्णरूप इसका भी है, जिससे साधक को पर्वत के समान अचल की सिद्धाई मूलाधार में होती है, जैसे सूक्ष्मता छठें चक्र में। प्राण अपान का अधार दोनों है, चार कार्य प्राण गति से-चार अपान गति से है, आंधी के समान धारण में दोनों समर्थ हैं, अतः साधक को दोनों की समानता अनुभव के योग्य है।

प्र०१२-हे गुरु जी यह भी महान भ्रम नष्ट भया परन्तु प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी कैसे जाग्रत है।

उत्तर-प्रथम ब्रह्मांड के समान शरीर को और भूलोक के समान नाभि को निश्चित करने योग्य है। अर्थात् जैसे भूलोक से सात लोक ऊपर और सात नीचे है वैसे नाभि स्थान से सात ऊपर सात नीचे है। जैसे विराट

भगवान के दोनो चरणके समान प्राण अपान, परंतु जैसे कारण वहाँ विराट के चरण का कारण वलि हैं वैसे प्राण अपान का कुण्डलिनी है, दशो दिशा के ऐश्वर्य से सम्पन्न वलि-वैसे कुण्डलिनी है, भूलोक मे वलि-नाभि मे कुण्डलिनी जिससे तीसरा चक्र दशदल का है, सिंहासन पर वलि वैसे सोभी है, सिंहासन पर नीचे को मुख किये वलि हैं—वैसे नीचे को मुख किये सो भी है, जहाँ वामन जी के समन नीचे दूसरे चक्र मे खड़ा होकर प्राण निवेदन करता है। मानो दान का कुश लेते ही वामन जी विराट रूप से हैं, वैसे प्राण भी स्वाँसगति सगर्भ कुम्भक द्वारा चौचक्र थे मे जाकर शीघ्रकुण्डलिनी के स्थान अपान रूप से उदय है, कुण्डलिनी वहाँ समझती जो दूसरे चक्र मे था वही आ उपस्थित है, शीघ्र मुख को ऊपर करती यही उसका जागृत होना है पुनः मुख को नीचे नहीं करती है। वहाँ अपान को देख वैसे लज्जित है जैसे विराट को देख वलि, सच्चित्व भाव को देख जैसे माया, यही वामन के समान प्राण की युक्ति है जिससे सामर्थ रूप से ऊपर होती है जड़ता मूलाधार में, जैसे जीत जाने पर वलि पाताल में! यद्यपि वलि के सबन्ध का कारण वामन हैं जैसे प्राण, परन्तु वलि की प्रीति वामन से है, वैसे कुण्डलिनी की प्रीति प्राण से है जड़ता रहित होने पर जैसे वलि वामन ज्ञान रूप से समान हैं वैसे कुण्डलिनी और प्राण ज्ञान रूप से समान हैं। वलि को बाँधने निमित्त गरुड़ हैं—वैसे मन का निश्चय गरुड़

है। वामन के युक्ति से विराट द्वारा बलि का सर्वस्व इन्द्र के प्रति है—वैसे प्राण के युक्ति से अपान द्वारा कुण्डलिनी का सर्वस्व अहंकार के प्रति है। वामन का भ्राता इन्द्र—वैसे प्राण का अहंकार है। यहाँ साधक इस कार्य के सिद्ध से उसी कुम्भक द्वारा चौथे चक्र में आकर प्राण के रेचक से छठवें चक्र में ऋषि स्वरूप आत्मा के प्रति निर्द्वन्द होता है, जैसे विराट के पश्चात् वामन भी हरि रूप से सिद्ध हैं। इसे यत्न कहा जाता— अर्थात् प्राण ऊपर को अपान नीचे को सदैव रहते हैं सो दोनों अयत्न है, किन्तु प्राण नीचे को अपान ऊपर को हों सो दोनों यत्न का रूप है, जैसे प्राण और कुण्डलिनी के सन्मुख में यत्न और विमुख में अयत्न है, जैसे नदी और वायु के सन्मुख में जल निर्मल और विमुख में मलिन अनुभूत है। अर्थात्, वायु और प्राण योग रूप हैं—नदी और कुण्डलिनी गुण रूप हैं, यद्यपि प्रकृति रूप दोनों पक्ष हैं जैसे दोनों पक्ष का आत्मा एक ही सिद्ध है किन्तु प्रकृति ही के गुण रूप में भेद है जिससे रचना की विचित्रता है, जैसे प्राण वही अपान और अपान वही प्राण, यथा स्त्री वही पुरुष और पुरुष वही स्त्री, परन्तु जब सब अपने स्थान हैं तब तक अन्यथा असमर्थ है जैसे संधि के एकता बिना सूक्ष्मता स्थूलता असमर्थ है, इस करके सब सुगम है जैसे स्वांस के स्थिरता से; वैसे प्राण द्वारा जागृत और अपान से असमर्थ है, मानो शीत से शीत का प्रभाव नहीं है। अतः मैं अपान वायें को आकर दूसरे चक्र में प्राण रूप से

जागृत करता है, इसी घुमाव के कारण प्राण को नीचे दूसरे चक्र में नियुक्त करना अति सुगम है, यद्यपि चौथा और छठवाँ भी प्राण का चक्र है, परन्तु कुण्डलिनी का मुख नीचे और पीठ ऊपर है, अतः दूसरे चक्र बिना सातो स्थान असमर्थ हैं, सो जैसे इस एक के सिद्ध से आठो महा सिद्ध हैं वैसे उस सन्धि के निश्चय से सर्वस्व सुगम है, यद्यपि सो सन्धि सर्वत्र है परन्तु जो राजा को जीत लेता वही अधिष्ठाता है जैसे शिव, इस कारण नाशिका का अग्र वहि सन्धि स्वरूप पताका है, वहाँ मन होते ही सिद्धाई सब तृण के समान हैं।

प्र० १४—हे गुरु जी और भी प्राणायाम कितने प्रकार का है कृपा करके उसे भी कहिये।

प्रश्नो०—जैसे विराट भगवान का बायाँ पग नीचे पाताल तक-सो लौटने पर दाहिना पग ऊपर ब्रह्म धाम तक-सो भी लौटने पर बलि के प्रति दोनों पग की स्थिरता है, ऐसे ही अपान वायु बायें से पग के तलवे तक जाके पुनः प्राण वायु हो कर दाहिने से ऊपर ब्रह्म रंध्र तक जाके सो भी लौट प्रथम की भाँति सन्धि काल में दोनों की स्थिरता होती है जैसे नाशिका का दोनों छिद्र बंद से उस कुम्भक में होता है। अपानगति नीचे सो पूरक है-प्राण गति ऊपर सो रेचक है, यत्न बिना मिनट में आठ बार निरंतर इस प्रकार होते रहते हैं, जैसे यत्न बिना बलि सो इन्द्र और इन्द्र सो सुदामा-कहीं नीचे कहीं ऊपर-कहीं नीच कहीं ऊँच-कहीं

दुखी कहीं सुखी–इस प्रकार बहत्तर प्रकार–वह सहस्र बार जन्म मरण होने पर शिव के समान आत्मरूपता को धारण करते हैं जैसे शिव अर्धनारी श्वरूप से हैं, भ्रम समूह को नष्ट करके स्थित होते हैं, मानो अनेक चक्र में कोई एक ही होते हैं ऐसे अनेक और होते हैं इसी का नाम घुड़ाचर न्याय है चेष्टा बिना यत्न से शांत होते हैं चेष्टा होने से प्रथम की भांति भ्रमण करते हैं इसी का नाम पुनि प्रत्यूह है। ऐसे ही छत्तीस सहस्र नाड़ी में अपान और छत्तीस सहस्र नाड़ी में प्राण भ्रमण करके सन्धि द्वारा हृदय में प्राण रूप से स्थित होता है जैसे विराट के पश्चात् वामन जी हरि रूप से स्थित होते हैं, तथा जैसे अहं ब्रह्म अनुभूत होता है। जिसमें साधु योगी जन चेष्टा से रहित हृदय में प्राण को अचल रखते हैं। चेष्टा होते ही भ्रमण शील होता है जैसे अनेक सृष्टि में अनेक बलि अनेक वामन होते रहते हैं, मानों सबों के बोध निमित्त तीन पग यहाँ तीन मुट्ठी यहाँ–दो पग में यहाँ सिद्ध दो मुट्ठी में यहाँ–तीसरा पग में यहां निवारण तीसरी मुट्ठी यहां–अनुभव करने योग्य है, जैसे यह अथल का व्याख्यान एक प्रकार यह भी है।

ऐसे ही जहां कपाल स्थान में प्राण वायु अस्त होकर अपान रूप से नीचे मूलाधार चक्र में अस्त होकर प्राण रूप से पुनः ऊपर को अस्त है इसे भी अथल कहा जाता यह भी मिनट में आठ बार आने जाते हैं। जैसे नासिका का दाहिना छिद्र

र करके बायें से स्वांस गति नीचे मूलाधार में मन से निश्चित अर्थात मरते समय अथवा जीते समय मन के निश्चय में की स्थिरता है, उस मूलाधार में अपान का पूरक अस्त वहां स्वांस गति समझ कुम्भक का आश्रय है, अर्थात् नों छिद्र बंद, इस कुम्भक में मन से निश्चित कि दूसरे चक्र आश्रय उदय है, स्वांस गति समझ रेचक का आश्रय है र्थात बायां छिद्र बंद दाहिना खुला है, इस आश्रय को रेचक रा छठवें तथा सातवें में मन के निश्चय से शांत हो, अर्थात प्रथम की भांति होता रहता है, जिससे साधु योगी जन क अथवा कुम्भक तथा रेचक मे सन्धि के प्रति अचल ते हैं। एक प्रकार यह।

ऐसे ही दाहिना छिद्र बंद बायें में अपान यु तीसरे चक्र में स्थित हो, वहीं अथवा कुम्भक तथा नकसे ऊपर संधि विषे शांत हो, एक प्रकार यह।

से ही दाहिना बंद बायें से अपान मूलाधार विषें हो, उसी न संधि विषें शांत हो अथवा कुम्भक तथा रेचक द्वारा शांत हो, शांत करना यह अर्थात रहना अथवा है परन्तु सन्धि तीनों के प्रति निश्चित करने योग्य है, एक प्रकार यह

से ही दाहिना बंद-बायें अपान उसी पाचवे चक्र मे अथवा कुम्भक रेचक से शांत हो एक प्रकार यह।

से ही दाहिना बंद-बाये से अपान मूलधार मे स्थित हो, पूरक मे स्वांस समझ कुम्भक हो इसमें भी स्वांस समझ.

अपान का रेचक पाचवें चक्र मे हो-पुनः पूरक पुनः कुम्भ पुनः रेचक इसी प्रकार होता रहे जैसे दाहिना छिद्र बं ही नकि खुला, यही चन्द्रमा की कला अपान का र है, नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे इस करके शीतलता है चार प्राणायाम इसमे भी है दो अस्त दो उदय, अर्थात् प्रथ से तीसरे मे-तीसरे से प्रथम मे, पाचवें से तीसरेमे-तीस से पाँचवें में-इसे यल कहा जाता परन्तु सन्धि स निश्चित रहे, एक प्रकार यह।

अब यहाँ वायाँ छिद्र बंद किन्तु दाहिने से प्राण वायु चक्र में निश्चित हो, स्वांस समझ कुम्भक का आश्रय इसमे भी स्वांस समझ रेचक का आश्रय-इसमे भी स समझ पुनः पूरक हो-इसी प्रकार होता रहे वायाँ छि बंद ही रहे नकि खुला, यही सूर्य की कला प्राण का रग मानो कुण्डलिनी को प्रसन्न करता है, चार प्राणायाम इसमे है दो उदय दो अस्त, अर्थात् दूसरे से चौथे मे चौथा से में, चौथा से छठवें में छठवें से चौथा में, सन्धि का निश्च सर्वत्र रहे-एक प्रकार यह भी है।

ऐसे ही बाँया बंद दाहिने से प्राण पूरक द्वारा चौथे में-रेच छठवें में अब यहाँ दाहिना बंद हो बायें से अपान मूला में हो वहाँ अपान का ही रेचक पाचवें चक्र में दाहिना ही रहे, पुनः सो अपान पाचवें से पूरक द्वारा तीसरे चक्र यही सातवाँ द्वार जयंती का स्थान है, यहाँ से कुम्भक

चौथे में प्राणरूप से स्थित होता है जहाँ आठवाँ द्वार अपरा-जिता का स्थान है। आठ प्राणायाम यत्नरूप है इसमे भी है स्वांस और सन्धि अर्थात्र अनुभव के योग्य है, एक प्रकार यह। ऐसे ही बांया बंद दाहिने से प्राण पूरक द्वारा दूसरे चक्र मे हो-कुम्भक द्वारा चौथे मे वहीं अथवा छठवें मे शांत हो एक पकार यह।

ऐसे ही भाखिक प्राणायाम अनुभव के योग्य है, अर्थात् मुख बंद नासिका के दोनों छिद्र से स्वांस भीतर करे, स्वास समझ नाशिका से बाहर करे, भीतर करना पूरक—स्थिरता-कुम्भक-बाहर करना रेचक है, एक प्रकार यह।

अथवां नासिका बंद मुख द्वारा स्वांस भीतर करे, यह पूरक है, मुख नाशिका दोनो बंद कुम्भक है, नाशिका बंद मुख द्वारा बाहर करे रेचक है। एक प्रकार यह।

अथवां मुख नासिका दोनो से स्वांस भीतर करे, स्वास समझ बाहर करे जैसे समुद्र गङ्गा का जल एक साथ भाटा ज्वार समानता होता रहता है, परन्तु जैसे ज्वार विषें समानता और भाटा विषें समानता है, :वैसे तीनों, विषें सन्धि को निश्चित करने योग्य है, किसी एक प्राणायाम को लव मात्र करने से मन इन्द्रियादिक स्वच्छ रहते हैं, सृष्टि का मूल प्राण है। इसकरके श्रेय है तिसपर भी आत्म चिन्ता प्राण चिन्ता में एक ही आधार सन्धि है, स्वास्थ भी शुद्ध होता है बाहर का स्वच्छ वायु भीतर और

भीतर का अस्वच्छ वायु बाहर होता है, नदी अथवा तालाब तथा बगीचा के प्रति अधिकतर श्रेय है, छोटे बड़े बाग सब सामान हैं जैसे ग्यारह रुद्र द्वादश कला-वैसे बारह प्रकार प्राणायाम उन सबों का सिद्धान्त एक अतः सब समान हैं।

प्रश्न १५—हे गुरु जी प्राणभिन्नआत्मा भिन्न—तिसपर भी प्राण जड़ आत्मा अजड़, अतः दोनों का सिद्धांत एक कैसे है।

उत्तर—जैसे अज्ञान दशा मे बलि और वामन भिन्न हैं-वही ज्ञान दशा में समान हैं, तथा अज्ञान करके कर्म का करना और न करना-प्राण का गमना गमन भिन्न हैं वही ज्ञान करके दोनो भाव समान है, जैसे राहु प्रथम भिन्न वही देवविषे समान हैं, तथा सोहं और अहं अंश-कृष्ण चन्द्र मेघ विद्युत्-विवेक और विवेकी एकत्र हैं जैसे गुण अगुण की समानता ! मानो आत्मा और प्राण इन दोनों की चिन्ता प्रथम जड़ता विषे जड़ रूप से थीं-वही एकत्र हो सिद्धांत की ओर चलती हैं, जैसे प्रथम अपान गति अज्ञान गति नीचे की ओर वही प्राण गति ज्ञान गति ऊपर की ओर चलती हैं। मानो यह दोनो उसी का रूप हैं। परन्तु जहां विषमता रूप है उस सिद्धांत के प्रति नाम रूप सूक्ष्म स्थूल जड़ अजड़ भेद अभेद कहां है जहाँ ध्याता ध्यान ध्येय सहित सब त्रिभेद शांत है, सो सिद्धांत अनुभव से सिद्ध है जैसे सर्पका चरण सर्पसे निश्चित है। उसी के बोध निमित्त कहना सुनना लिखना पढ़ना सर्वत्र है। जैसे

सोऽहं में प्रथम सः पश्चात् अहं, अहंब्रह्म में प्रथम अहं पश्चात् ब्रह्म है, मानो दोनों ओर जड़ता से परे है। इसे अठवाँ कहो अथवा छठवाँ इत्यादि कहो किन्तु सर्वत्र सिद्ध है। जैसे दुग्धरूप सः और जलरूप अहं इसके निमित्त-हंस गति है, अहं मिथ्या-ब्रह्मं सत्य इस निमित्त संत गति है, परंतु तुम जैसे को दोनो का सिद्धांत एक है। जैसे आदि में श्रवण भक्ति-अन्त आत्मनिवेदन-किन्तु जो सिद्धांत यहाँ वही वहाँ है, ऐसे ही सृष्टि और प्राण तथा माया और देह-बीज और वृक्ष के समान कार्यरूप एक है, इस कार्यका आधार सन्धि रूप जीव सो कारण है, इन दोनों का आधार सो सिद्धांत निरकारण है जैसे बोधमात्र "अ" इसका कारण अन्य नहीं है, सो दोनों के असंग से विषमता है और कार्य के दर्शन में दो की एकता समानता है, अतः भ्रमभय शान्त करने योग्य है जैसे अघुना यमराज सूर्य को देख नम्र होते हैं।

❀ प्रश्न १६—हे गुरु जी इस करके महान भ्रम नष्ट भया और ब्रह्मांड रूप शरीर का आधार अपने आत्मा राम को समझ लिया, मानो ऊपर भी अकर्ता और नीचे भी अकर्ता किन्तु मध्य में सन्धि भंग हो कर्ता अभंग से अकर्ता है, मानो सिंह रूप प्राण के ऊपर वही सवार है, अतएव से इसका नाम वाहक भी है, इस बिना प्राण निर्जीव है, इस करके प्राण अंग रूपता भी करता है, किंतु मत अमत के निर्णय में बीज अंकुर वृक्ष तीनों कार्य रूप जड़ हैं वहां भी

आत्मा असङ्ग है जिससे सो मध्य में भी सदा अकर्ता है, मानो अमृत के सिंचने से तीनों भेद का जड़ जीवित हैं, इस बिना मृतक हैं, इस कारण अमृत रूप सामर्थ सर्वरूप है सो यद्यपि सर्वत्र है परन्तु प्राण उसका स्थान है जिससे प्राण के होते हुए और इन्द्रियां छिन्न-भिन्न होती रहती हैं, उसी के एकता से प्राण को पुरुष और अक्षर भी कहा जाता है किन्तु पृथक से प्राण और शरीर दोनों क्षर करके जड़ हैं, इस कारण पुरुष और अक्षर सो सन्धि रूप जीव है अतः क्षर अक्षर दोनों से परे पुरुषोत्तम करके सिद्धांत है। जिसे आप विषमता से सिद्ध करते हैं, मानो गृह शून्य होने पर सो महेश्वर यही हैं, शून्य करने का सहायक इनका साथी भी विराग है जैसे गौ का साथी चन्द्र, जिससे दोनों पक्ष समान हैं जैसे दो हैं एकता में समानता सो सिद्ध है, इसे भी समझ लिया। अतः नाशिका के अग्र संधिस्वरूप को निश्चित करता हूं। परन्तु गुण प्रवाह कैसे है कृपा सहित इसे भी कहिये।

उत्तर—हे महा प्रिय ऐसे ही अनुभव से सुगम होता है जैसे यह नवगुण प्रवाह। अर्थात् हृदय से प्राण जब नाभि में जाता है वहाँ सत्वगुण का सतोगुण है। वहाँ से मूलाधार में सतोगुण का तमोगुण है, अस्त होते ही शुद्ध तम है। वहाँ से दूसरे चक्र में तम का रजोगुण है, वहाँ से हृदय में रज का सतोगुण है, वहां से छटवें चक्र में सतोगुण का तमोगुण है अस्त होते ही शुद्ध तम है। वहाँ से पांचवें चक्रमें तम का रजो

गुण है, यहां से नाभि में रजोगुण का सतोगुण है, वहाँ से चौथे में प्रथम की भांति शुद्ध सतो गुण है। तीन भेद मध्य से-तीन भेद आदि से-तीन भेद अन्त से, जैसे गंगा का सतोगुण जमुना सरस्वती से और उन दोनों का रज तम गङ्गा विपें है, जमुना का तम सरस्वती विपें और सरस्वती का रजोगुण जमुना विपें है। छत्र भेद इस करके तीन भेद जमुना सरस्वती गङ्गा सहित, अतः नव गुण नव योग दोनों त्रिभेद विपें हैं, अर्थात, यद्यपि अयत्न विपें गुणयोग अठारह और यत्न विपें गुणयोग सोलह हैं, जैसे प्रत्येक देह मे प्रत्येक जीव, यथार्थ में एक ही गुण रूप से देह और एक ही योग रूप से जीव सर्वत्र सिद्ध है, जैसे गुण रूप मेघ और योग रूप विद्युत-तथा गुणरूप कृष्ण और योग रूप चन्द्र है, यद्यपि मेघ बिना विद्युत और कृष्ण बिना चन्द्र की प्रतीत नहीं है जैसे शरीर बिना जीव की, परन्तु गुण के भाव अथवा अभाव इन दोनों विपें सो सिद्धांत अचल है, इसी सिद्धांत से नवोयोगेश्वर समान है न कि एक दूसरे विपें निश्चित करते हैं किन्तु अपने ही विपें सब आत्मपरायण हैं। इस करके स्वधर्म के तट गुणज्ञता कैसे प्रतीत होती है-- जैसे अक्षयवट के तट गङ्गासहित त्रिभेद की एकता। इस स्व-धर्म का सहायक साक्षी अध्यात्मक है अतः यही साधु का रूप धर्मात्मा है इस बिना अनात्म सो असाधु अधर्मी हो जाता है। इसी निमित्त कृष्ण इत्यादि प्रकट होते हैं जिनके राहु के समान

अनात्म, चक्र के समान अध्यात्म से पृथक् होता है, इस वि
दुर्वासा के समान अपने चेष्टा का अन्यत्र दौड़ना-चक्र
समान स्वधर्म पछेड़ करता रहता है किन्तु अम्बरीष के सम
भक्ति के प्रति स्थिरिता होती है।

प्रश्न १७-हे गुरु जी नाभि स्थान अपान का मध्य
और हृदय स्थान प्राण का मध्य है इस करके मध्यमें तीनों
सतो गुण हैं, मानो जैसे मध्य अवस्था का स्वभाव है। मूला
धार मे अपान अस्त है इससे वहाँ तम है। छठवें चक्र
प्राण अस्त है इससे यह भी तम है। दूसरे चक्र मे प्रा
उदय है इससे यह रजोगुण है। पाचवें चक्र में अपान उ
है इससे यह रजोगुण है। मानो आदि अन्त अवस्था
स्वभावसे नीचे ऊपर हैं। तथा आदि सो अन्तमें और अन्त
आदि मे कैसे प्रतीत हैं जैसे दो सज्जन में दोनों का शीश दो
के चरण मे नम्र हैं, जिसे समझ लिया, परन्तु त्रिभेद कित
हैं इसे भी कहिये।

उत्तर—यद्यपि त्रिभेद सर्वत्र हैं जिससे तीन
नव करके सबों की देह है, परन्तु मुख्य अनुभव के योग्य
अर्थात्, आदि मध्य अन्त-ब्रह्मा हरि शिव वेद शास्त्र पौराण
चन्द्रमा सूर्य अग्नि-प्राण आपान कुण्डलिनी-प्राण अपा
अहंकार-मन बुद्धि विचार-पूरक कुम्भक रेचक कर्मज्ञानभक्ति
ज्ञान अज्ञान विज्ञान-कर्म विकर्म अकर्म संकल्प विकल्प
निर्विकल्प-गङ्गा जमुना सरस्वती-ईडा पिंगला सुषुम्ना

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, भाटा ज्वार समानता, सत रज तम इत्यादि। किन्तु सिद्धांत के बोध विना त्रिभेद के पृथक् मे कुयोग है, जैसे कर्मरूप रावण भक्तिरूप जानकी ज्ञानरूप राम, तथा मन बुद्धि विचार का रूप तीनों हैं परन्तु निर्वाण का निश्चय तीनों विषें एक है जिससे सिद्धांत का बोध सिद्ध है जैसे अगुणके प्रति सब त्रिभेद समानहैं । दो के एकता में योग है, अर्थात् कर्म ज्ञान एकत्र हों अथवा कर्म भक्ति तथा ज्ञान भक्ति हों, विरोध विना तीनों की एकता श्रेय है जैसे आचार अनाचार विरोध विना महाश्रेय है। अर्थात् जैसे कृष्णके प्रति युधिष्ठिर सहित पांचो समान हैं वैसे छठवां विचार के प्रति पञ्च विचार समान हैं। ऐसेही यद्यपि भीम अर्जुन एक पक्ष हैं और नकुल सहदेव एक पक्ष हैं। जैसे वायु तेज से सुविचार आचार एक पक्ष हैं और जल जड़ से कुविचार अनाचार एक पक्ष हैं। परन्तु जैसे युधिष्ठिर के प्रति वह चारो समान हैं वैसे आकाश के प्रति यह चारो समान हैं। यही आकाश रूप पांचवां विचार है। इस विचार विना कभी आचार सिंह रूप से उस अनाचार रूप मृग को मारदेता है, कभी यह उसे मार देता है, जैसे रेचक पूरक तथा ज्ञान अज्ञान का विरोध है। किन्तु समानता से विरोध विना एक साथ है जैसे कुंभक में, मानो राम रूपी विचार से यही-मृग सिंह की समानता है। जैसे विज्ञान, अर्थात् ज्ञान के सम्बन्ध से अज्ञान ही विज्ञान बन जाता है और ज्ञान अपने स्वभाव ही से रहता

है जैसे जमुना अस्त होकर गंगा विषे विज्ञान रूप हैं और सरस्वती अपने स्वभावही से हैं, अतः उस संधि स्वरूप छठवां के प्रति आकाश के समान सूक्ष्म और पर्वत के समान स्थूल दोनों समान हैं। इसी के निश्चय बिना विरोध होता है जैसे ब्रह्माजी के लेख में पंच बाण की स्थिति है न कि छठवां जो अलख अलेख है। जिसे तुम ऐसे उस अमृत के सम्बन्ध से विष भी अमृत मय सिद्ध करते हैं, इस बिना भ्रम से लेख विषे होनी अनहोनी प्रतीत होती है अतः त्रिभेद अनुभव करने योग्य है।

प्रश्न १८ हे गुरुजी असंग रूप ज्ञान को समझ लिया, परन्तु ईडा पिंगला सुषुम्ना कैसे हैं।

उत्तर वांये ओर प्रधान नाडी ईडा और दाहिने ओर प्रधान नाडी पिंगला, किन्तु नीचे से ऊपर तक मध्य में सन्धि रूप सुषुम्ना है, मानो शिव के समान प्राण अपान का आधार है, जिससे सन्यासी, महात्मा दंड के रूप में आश्रय लेते हैं।

प्रश्न १९ हे गुरुजी जिन बहत्तर सहस्र नाडियोंमें प्राण अपान भ्रमण करते हैं सो कैसे और कहां से हैं, इसे भी कृपा करके कहिये।

उत्तर हे प्रिय प्रथम ब्रह्मांड, शरीर, घड़ी, इन तीनों की एकता अनुभव करो। मानो सेकेन्ड रूप अपान जैसे ब्रह्मा, मिनट रूप प्राण जैसे हरि, घंटा रूप अहंकार जैसे शिव यद्यपि चतुर्युग सहस्राणि दिनमेकं पितामहः, इसी दिन के प्रमाण से शत वर्ष की अवधि ब्रह्माजी का है, परन्तु जैसे शिव

के अवधि में छत्तीस सहस्र हरि होते हैं वैसे एक हरि के अवधि में छत्तीस सहस्र ब्रह्मा होते हैं, हरि कर रूप वही प्राण की नाडी है और ब्रह्मा का रूप वही अपान की नाडी है मानो चित्रकार से चित्र चित्रित है। जैसे दूसरे चक्र से छत्तीस सहस्र प्राण की नाडी छठवें चक्र तक है और पांचवें चक्र से मूलाधार तक छत्तीस सहस्र अपान की नाडी है। जब छत्तीस सहस्र ब्रह्मा हो जाते हैं तब ब्रह्मा उस हरि के स्थान जाते हैं और हरि उस ब्रह्मा के स्थान जाते हैं। जैसे अपान उस प्राण के स्थान और प्राण उस अपान के स्थान। इसी प्रकार होते-होते जब छत्तीस सहस्र हरि हो जाते हैं तब दोनों शिव विषें शांत होते हैं, जैसे अहंकार विषें प्राण अपान, मानो अहं ब्रह्म। परन्तु जैसे सबों का दिन रात्रि समान है वैसे इनका भी है, अतः शिव का दिन व्यतीत से उतने ही रात्रि है जिसे अहो रात्राणि तथा महा महा प्रलय कहा जाता है। मानो जड़ता रहित आद्य पद वही है जिसे अर्धनारीश तथा सन्धि स्वरूप कहा जाता है उसी भाँति पुनः दिन पुनः रात्रि-आदि सो मध्य में मध्य सो अन्त में अन्त सो आदि में भ्रमण करते हैं-मानो यत्न बिना यह भी अयत्न है। यद्यपि एक शिव के अव... में अनेक ब्रह्मा ब्रह्मांड हैं, अर्थात् जितने ब्रह्मा उतने ब्रह्मांड। परन्तु छत्तीस सहस्र में छत्तीस सहस्र के गुणनफल से जो संख्या होती है उतने ही ब्रह्मा और उतने ही नाडियों की संख्या है। किन्तु प्राण की नाडी छत्तीस सहस्र है इसके

अधिक उन सब नाडियों का विस्तार अपान द्वारा है सेकेण्ड का विस्तार अनुभूत है । परन्तु छत्तीस सहस्त्र के पश्चात् दोनों का हेर-फेर है जिससे बहत्तर सहस्त्र से अपान की समानता निश्चित् है । यद्यपि इस त्रिभेद विस्तार ब्रह्मादरि शिव करके है किन्तु इन तीनों का कोष्ट है जिससे श्री शिव की एकता वही कृष्ण रूप को करती है जैसे श्री हरि के एकता से होती है वैसे चित्त की एकता सर्वत्र है। परन्तु निश्चय जो ज्ञान है और अनि जो अज्ञान है इस करके उलटा प्रतीत होता है-जैसे अज्ञा को शिव की अवधि सो दिन और व्यतीत सो रात्रि प्र है-वही ज्ञानी को जगत का अन्त सो दिन और उदय रात्रि करके है, जिससे तुम जैसे को जो सिद्धांत सृष्टि अन्त में है वही उदय मे है वही वर्तमान में भी है। तथा हो गुणरूप थी और एक ही गुण रहित शिव-अतः रात्रि श्री दिनरूप शिव-किन्तु गुण अगुण का भेद है, इसी निश्चय में शान्ति और इसी के अनिश्चय में भ्रान्ति से विस्त है, जैसे ऊपर के कोष्ट में आदि ब्रह्मा मध्य हरि अन्त शि उसके नीचे के कोष्ट में आदि गणेश मध्य सूर्य अन्त उसके नीचे में आदि जड़ मध्य मनुष्य अन्त सर्प—मानो के समान तीनों कोष्ट सबों के देह में भी हैं, जैसे ऊप नृत्यकार तीन है और मध्य में जितने शिव के ब्रह्मा होते हैं-परन्तु नीचे के कोष्टमें गणना सो करे जो स

तरंगों की गणना करे, अथवा जो सर्वकाल अपने स्थान रहने को निश्चित करे। यद्यपि चिरञ्जीवी अनेक हैं सो ब्रह्मा की समानता करते हैं और भी कितनेक हरि से समानता करते हैं, परन्तु शिव रूपी महा पताका में सब असमर्थ हैं। अतः तुमको उचित है नासिका के अग्र वही है उसमें सावधान रहो।

प्रश्न २०-हे गुरुजी इसे समझ लिया, परन्तु बहुतों करके बहत्तर सहस्र एक शत एक नाडी हैं सो कैसे हैं इसे कहिये, तथा सेनापतियों में षट्मुख प्रधान कैसे हैं, सेना क्या है इसे भी कहिये।

उ० जिन महाशय को सुषुम्ना और शिव नाडी करके प्रतीत है वही उस एक को मानते हैं, परन्तु जो अनुभव से देखते हैं शिव और सुषुम्ना नाडी नहीं हैं किन्तु जिसमें प्राण अपान भ्रमण करते हैं सो नाडी है इस कारण सो एक नहीं मानते हैं। ऐसेही जिनको अधिक मास अधिक प्रतीत है सो शत नाडी प्रतीत करते हैं, अर्थात् अधिक मास के समान शिव के अवधि में पचास हरि और हरि के अवधि में पचास ब्रह्मा बढ़ जाते हैं, परन्तु जो अनुभवी हैं सो अधिक मास की पूर्ती उसीके अन्तर्गत अस्त कर देते हैं, सो एक शत एक निकाल कर बहत्तर सहस्र नाडी निश्चित करते हैं। ऐसेही तुमको भी निश्चित करने योग्य है कारण कि सार वस्तु अनुभव से सिद्ध है न कि दृष्टिगोचर से। ऐसेही षट्मुख भी अनुभव से सिद्ध होने योग्य हैं न कि विवाद से। अर्थात् यद्यपि सुर असुर

प्राण अपान के समान पृथक और नाडी भी पृथक है जिसे ब्रह्माजी शिवजी से षटमुख को भूमि से उत्पन्न कराये, पार्वती के गर्भ से हों तब सुर असुर को समान देखेंगे, कारण कि दोनों पच्छ के समाजी समान और एक हैं, कभी नीचे कभी ऊंचे कभी सुर कभी असुर अनेक भेप से श्री शिव को प्रसन्न करते हैं, इन सबों में बड़े बड़े महारथी सेनापती हैं, किन्तु सबों का कल्याण हेतु शास्त्र रूप विचार है मानो सबोंका रखवार है जिस करके सुर असुर नीच ऊंच सबों में उत्तमता अनुभूत है इस बिना मलिनता और निषेध अनुभूत है जैसे यथार्थ बिना नृत्य भी तुच्छ प्रतीत होता है परन्तु सो भी विचार से अनुभूत है। अतः सो षटमुख शास्त्र के रूप हैं, समाज सेना रूप है उनमें वेद इत्यादि गणेश इन्द्र सहित अग्नि इत्यादि यद्यपि सेनापति हैं किन्तु षटमुख इनका भी सेनापति महेश्वर हैं, इसी कारण गीता में प्रसिद्ध है दूसरा चक्र भी इन्हीं से प्रधान है। अतः प्रिय जैसे षटमुख और विचार जड़ता का अभाव करके शिव के प्रति निर्द्वंद हैं वैसे वहीं तुम भी निर्द्वंद बनो वही सबोंका सिद्धान्त है।

प्रश्न २१— हे गुरुजी यह भी महा भ्रम नष्ट भया—तथा जिस अज्ञान विषे रात्रि है और जिस ज्ञान विषे दिन है तथा जिस समानता विषें दोनों की प्रतीति है इसे भी समझ लिया, जैसे कर्म गृहाश्रम और ज्ञान सन्यास दोनों से युक्त वही शिव रूप गृहस्थ है। परन्तु जिस शा

विचार से उत्तमता है उस करके मद्य-मांस कैसे उलंघन होता है, जिस बिना समानता नहीं और समानता बिना निरन्वन नहीं है, कृपा करके इसे कहिये।

ॐ उत्तर—हे प्रिय इसी का नाम बोधाभ्यास है- ऐसे ही अनुभव से सुगम होता है-किन्तु जैसे इस बिना उलटा प्रतीत होता है वैसे शास्त्र के मर्म बिना सुगम सो कठिन प्रतीत है। मानो इसी निमित्त वामी अन्न मांस-गुरु दिक्षा बिना उसके हाथ का जल मद्य समान है, ऐसे ही अनेक वस्तु हैं जैसे मकांकार चिच्छिद्रा, सो सब उस समानता से स्वीकार होते हैं इस मर्म बिना तिरस्कार होते हैं। जैसे इसी शास्त्र के युक्ति से देवताओं से सुरा स्वीकार है अतः सुर कहे जाते हैं-इसके बिना असुर कहे जाते हैं। इसी शास्त्र युक्ति से मत्स्योदरी भी पराशर जी से स्वीकार है-वैसे ही युक्ति से राग बिना विराग भी अचल रखते हैं वही विचार रूप महापुरुष कहे जाते हैं, जिससे ब्रह्म स्थानके चेष्टा बिना हरि के समान पुत्र विषै राग से रहित आत्मा की स्थिति अचल रखते हैं जहां तीनों गुण समान से शांत हैं। अतः तुम भी सर्वकाल अपने स्वरूप ज्ञान में स्थिति रहो जहाँ भ्रम किंचित् भी नहीं है, किन्तु इसी बिना उस समानता रूप विचार को (आचार अनाचार-सुविचार, कुविचार) यह चारों बुद्धि को अमिष्ट करके दीनता रचते हैं, किन्तु स्वरूप ज्ञान का निश्चय होवे ही सूर्योदय के समान अन्धकार सब नष्ट होता है। जैसे

रावण से राम-कंस से कृष्ण-कलियुग से कल्कि-अविचार विचार अच्छादन हैं, परन्तु स्वरूप ज्ञान के निश्चय से चा को चारो शांत करके अपने विषें समान रूपसे सिद्ध किए न कि प्रथम की भाँति जो शास्त्र से विरोध है, जिस विच को तुम जानने में महा चतुर हो, जैसे कि आत्मस्वरूप समान राम-विराग के समान बन्दर-अहंकारके समान राव इसी समानता से सुगम है।

प्रश्न २२—हे गुरुजी जिसे गुरु मिले ऐसे ही-मानो चन्द्र मंडल से युतियां अमृत की वर्षा कर हैं, अतः श्री के समान कुण्डलिनी भी सो कैसे सुगम से सि होती है।

उत्तर—जैसे गङ्गा अपने तट पर साधु ज को देख कर प्रसन्न होतीं हैं—वैसे दूसरे चक्र में विचार को दे सो भी प्रसन्न होती है, मानो दोनों के सन्मुख में प्रसन्नता इस बिना महाअहंकार को शान्त करना कठिन है, जे । मह रावण को शान्त करना राम से कठिन है। अर्थात आकाश और आकाशज,जैसे का दंभे—किंतु सर्वों को सवत्र भेजने समर्थ हैं वैसे महाअहंकार महारावण भी हैं-मानो चा रक समान सूक्ष्म और मूल हैं। उसी के हेतु राम अपने सहायक सेना लेकर अयोध्या से चले जैसे विचार अपने सहायक मन इन्द्रियादिकों को एकत्र करके दूसरे चक्र से चलता है। जहाँ वह दोनों शून्य स्थान में हैं, यद्यपि दोनों

सर्वत्र समर्थ हैं-परंतु ऊपर आकाश विषें वह और अंतष्करण में महा अहंकार है, जैसे वीर्य विषें स्थूल अहंकार और लङ्का में स्थूल रावण है, यदि अहमित होते ही अनहं से निवारण हैं वहाँ मानो अंकुर शांत है, किन्तु अहं होते ही मानो वृच का विस्तार हो चुका। यद्यपि आधार संधि पृथक् है—जैसे वहाँ राम के सेना साथ जानकी नहीं हैं और विचार के सेना साथ कुण्डलनी नहीं है, मानो जड़ चेतन के पृथक् का ज्ञान सब को उपदेश करतीं हैं, जिसे अनुभव करने योग्य है-जैसे वहाँ राम महारावण का अनुभव करते हैं और विचार महा अहंकार का, वैसे सो भी दोनों इन दोनों का अनुभव करके हँसते हैं, अर्थात् सेना का पौरुप सेना के साथ नहीं है, किन्तु नीचे अयोध्या मे जानकी और नाभि में कुण्डलिनी है, वैसे यह भी दोनों नीचे से हँसतीं हैं, मानो राम और विचार को अपना नाटक दिखातीं हैं। जिससे अनायास अपने-अपने सेना सहित राम और विचार गिरजाते हैं, जैसे उस आधार-रूप सन्धि बिना इन्द्रियादिक सहित शरीर अनुभूत है। इसी भाँति अनेक बार आते जाते हो गया जैसे बोध बिना रेचक पूरक। अतः राम को थकित देख जानकी महा रावण को शांत करि राम को प्रसन्न कारे राम के प्रति स्थित भई। जैसे विचार करते-करते विचार के थकित मे कुण्डलिनी महा अहंकार को शांत करके विचार विषें सामर्थ रूप से स्थित होती है जिसे निश्चित करने योग्य है। अर्थात्, सर्वो के

बोध निमित्त महापुरुषोंका आगमन होता है, जैसे वसुदेव भी अनेकों बार जमुना के आर-पार आते जाते थे, किन्तु जिस दिन कृष्ण को लेकर चले उसी दिन यत्न सिद्ध का रूप है, परन्तु अबोध वसुदेव को इसका मर्म नहीं है यदि होता तो प्राणरूप कृष्णको नीचे करते जैसे दूसरे चक्रमें किया जाता है मानो वह भी वहाँ नाटक देखते हैं। किन्तु ऐसे साधु स्वभाव को भगवान सहायता करते हैं जैसे प्राणके समान कृष्ण अपना अङ्ग नीचे करके जमुनाको शांत किए, वसुदेव भी सुख से पार गये, जैसा इस यत्नके साधक सुखसे पार होते हैं। ऐसे ही नेउलाका प्रमाण भी अति सुगम है-अर्थात् नेउलके समान विचार- कुण्डलिनी सो सर्पिणी के समान- वाम्बी के समान नाभि अनुभव के योग्य है। मानो नेउला अपने नाशिका में औषधको चिन्तन करते रहता है जिससे नेउला की हार कभी नहीं होती है, वैसे अपने नाशिका के अग्र जो महा औषध है उसका चिंतन करते रहने से विचार की हार कभी नहीं होती तथा जैसे आगे पीछे दोनों ओर से युक्ति युद्ध मे नेउला महा चतुर है वैसे दूसरे चक्रमे आगे से-तीसरे चक्रमे पीछेसे विचार का युक्ति युद्ध अनुभवके योग्य है। तथा जैसे सर्पिणी को जीत कर बगुला का अंडा भी खाकर वृक्ष के नीचे ऊपर नेउला निर्द्वन्द रहता है - वैसे विचार भी निद्वन्द होता है अर्थात् निर्वाण के निश्चय बिना आकाशगमन आकाशचारी की चेष्टा सो अंडा है इस चेष्टा करके सो बगुला है। इसे तृणके समान

त्याग कर विचार निर्वाण को निश्चित करता है, यही साधु स्वभाव और औपध सर्वस्व है उसे सुगम होने ही योग्य हैं।

❀ प्रश्न २३—हे गुरुजी अपूर्वसे अपूर्व इसे निश्चित करता हूं, परन्तु सो जानकी लङ्कामें दीन भावसे मुखको नीचे की हैं जैसे कुण्डलिनी - इसका कारण कहिये।

❀ उत्तर—यद्यपि सूक्ष्म स्थूल में एक सन्धि है- जैसे सूक्ष्म पुर्य्यष्टक और स्थूल देह में, तथा स्त्री पुरुष में जिससे उलट-पलट होने में विलम्ब नहीं होता है, जैसे नीचे से मुख ऊपर को, किन्तु चेष्टा के कारण विलम्ब होता है जैसे अहं सूक्ष्म इस स्वभाव को ब्रह्मा धारण किए, अहं प्रकृति इस भाव को शिव, अहं अध इस भाव को हरि धारण किए जिससे पुरुषोत्तम करके प्रसिद्ध हैं। सो राम उस महारावण को प्रकृति रूप से मारने में समर्थ हैं न कि अहं सूक्ष्म अहं ब्रह्म से, अतः अपना स्वभाव यदि रामत्याग करते हैं तब सब पुरुषाकार को स्त्री होने में विलम्ब नहीं है, अर्थात् इस पुरुषत्व का अधिष्ठाता हैं। ऐसे ही रहस्य जानकी के प्रति लङ्का में है, सो भी स्थूल रावण को अहं ब्रह्म से मारने मे समर्थ हैं न कि प्रकृति रूप से, अतः जानकी भी यदि अपना स्वभाव त्याग करें तो सब स्त्रीकार को पुरुष होने में विलम्ब नहीं है अर्थात् यह भी इस स्वभाव का अधिष्ठाता हैं, जैसे कर्म का अधिष्ठाता रावण, मानो तीनों अपने स्वभाव के महा पंडित हैं अर्थात् दिन की छाया दिन के आतप से शांत होती है और

रात्रि की छाया रात्रि के आतप से न कि प्रतिकूल से, तथा जैसे चन्द्रमा के सन्मुख चन्द्र कान्तमणि और सूर्य के सन्मुख सूर्य कान्तमणि होती हैं, जैसे चार योगिनी चन्द्रकांत के स्वभावसे अपान के स्थान हैं और चार योगिनी सूर्य कांत के स्वभाव से प्राण के स्थान हैं सो उन्हीं से तद्रूपता होती न कि प्रतिकूल से। वैसे ही चन्द्रमा रूप जानकी और चन्द्रमा रूप आद्य पद है यह दोनों प्रकृतिरूप हैं इन्हीं का प्रतिभाष महारावण महा अहंकार हैं इसी कारण शिवका प्रतिभाष अहंकार है सो इसी द्वारा शांत हैं न कि अहंब्रह्म राम से। वैसे सूर्य रूप राम और सूर्य रूप अहंब्रह्म है-इसका प्रतिभाष स्थूल रावण स्थूल अहंकार हैं, सो इस द्वारा शांत होते न कि प्रतिकूल से। इसी कारण राम मानो वहाँ असमर्थ हैं और जानकी मानो वहाँ असमर्थ हैं। जिससे तुम ऐसे चतुर जन गुण रहित सन्धि के प्रति गुणरूप प्रकृति को सुगम से शांत करते हैं। जैसे अहं प्रकृति अहं सूक्ष्म अहंब्रह्म-यह तीनों भेद अनहं से समान हैं। अतः मूर्ख को कठिन चतुर को सुगम होने ही योग्य है, परन्तु इसकर के दोनों को अति सुगम है।

प्रश्न—२४ हे गुरुजी अपार भ्रम नष्ट भया—परन्तु आठ स्थान में आठ योगिनी कैसे हैं।

उत्तर—हे प्रिय जब तक चित्त अहंकार ऊपर रहते हैं तब तक कण्ठ में मध्यमावाणी अमृत मय से शोभा नहीं देती है, अतः विचार दोनों को नीचे करता है।

अर्थात चित्त के निरोध से उदान वायु कंठ में है सो भी अनायास नीचे गिर जाती है जैसे अनहं से अहंकार, अर्थात चित्त उदान दोनों जल रूप हैं, जिससे विचार सर्व श्रेय और सुगम है। अतः मूलाधार में अपान के स्थान अलम्बुपा योगिनी और अहंकार को निश्चित करने योग्य है। दूसरे चक्र में प्राण के स्थान उत्पला योगिनी और चित्त को। तीसरे चक्र में अपान के स्थान परावाणी और जया योगिनी को। चौथे चक्र में प्राण के स्थान विजया योगिनी और पश्यती वाणी को। पांचवें चक्र में अपान के स्थान रक्ता योगिनी और मध्यमा वाणी को। छठवें चक्र में प्राण के स्थान सिद्धा योगिनी और वैखरी वाणी को। पुनः तीसरे चक्र में अपान के स्थान जयन्ती योगिनी और मन को- यही सातवाँ द्वार है। पुनः चौथे चक्र में प्राण के स्थान अपराजिता योगिनी और बुद्धि को-यही आठवाँ द्वार है। अर्थात जया विजया जयन्ती अपराजिता यह मध्य में हैं। रक्ता सिद्धा अन्त में। अलम्बुपा उत्पला आदि में हैं। दो दो का जोड़ा और पृथक भी हैं। जैसे मन बुद्धि चित्त अहंकार, परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी, चार प्राण गति में चार अपान गति में हैं। मानों सब चौबीस कार्य रूप हैं जैसे चौबीस तत्व। जिसे दत्तात्रेय भी चौबीस गुरु करके उपदेश करते हैं। किन्तु शून्य पच्चीसवां आकाश रूप है। अतः जैसे आकाश के प्रति सब शांत हैं वैसे गुण रहित संधि जो छठवां है उसके प्रति आकाश सहित सब शांत हैं अर्थात शुद्ध रति ज्ञान दीपिनें, जो अबाध का

भी सुगम है। अर्थात आकाश सतोगुण-वायु तेज रजो गुण जल जड़ तमोगुण- इसी का नाम गुण प्रकृति है। इसे तीन से पांच कहो अथवा पांच से तीन कहो इसी का नाम तीन पांच है। जो विचार से सब शून्य हो जाते हैं किन्तु गुण रहित अशून्य वही संधि स्वरूप है।

ॐ प्र० २५-हे गुरु जी आप की युक्ति सब मनोहर हैं सो धारण करनेही योग्य है, परन्तु जय सो प्राण और विजय सो अपान-ऐसेही दोनों के प्रति जया विजया भी होने योग्य हैं सो विपरीत होने का कारण क्या है।

ॐ उत्तर-हे प्रिय ब्रह्मा जी की चतुरता चतुर जन अनुभव करते हैं, यदि जय के प्रति जया और विजय के प्रति विजया हो तब एक पक्ष प्रबल और एक पक्ष निर्बल से विषमता है, अतः अपान के प्रति जया और प्राण के प्रति विजया से दोनों पक्ष समान से समानता रूप निर्वाण है, जिससे विचार रूप राम विजया के स्थान हैं।

ॐ प्र० २६-हे गुरु जी यद्यपि कार्य रहित विवेक सर्वत्र निश्चित है परन्तु विवेक युक्त कार्य का आश्रय भी श्रेय है अतः उन आठों का गुण स्वभाव कहिये।

ॐ उत्तर-जहां विजया के स्थान मन बुद्धि विचार एक हैं-वहां से अपान जब जया के स्थान जाता है वहां मन कैसे प्रतीत है जैसे विराट के साथ गरुड़, बलि के समान अहंकार का मुख नीचे होता है। यहां से अलम्बुषा के स्थान मन उस

अहंकार के साथ अपान से मित्र भाव सिद्ध करता है। वहां से रक्षा के स्थान अपान कैसे अनुभूत है जैसे सुग्रीव और विभीषण-सो मन हनुमान के समान राम रूपी रक्षा से मित्र बना कर राज्य पर स्थापित करता है। वहां से जयन्ती के स्थान मन द्वारा अपान मानों पूर्ण कला को धारण करता है सो मन चार कार्य अपान द्वारा करके समानता से अपान के साथ पुनः विजया के स्थान प्राण रूप से सिद्ध करता है, जैसे अमास्वया को सूर्य चन्द्र हैं। अब यहां उत्पला के स्थान बुद्धि द्वारा प्राण कैसे प्रतीत है जैसे अवद्ध रूप से कृष्ण। यद्यपि यहीं वर्षा काल जल रूप चित्त है, परन्तु बुद्धि मानों चक्र होकर जल समूह को शून्य करती है। सिद्धा के स्थान बुद्धि द्वारा प्राण सर्वस्व सिद्ध करता है। जैसे अपराजिता के स्थान पर अपर सुगम से सिद्ध है अर्थात् शून्य अशून्य। यद्यपि उस पार मन द्वारा- इस पार बुद्धि द्वारा है, किन्तु प्रथम की भांति विचार सहित तीनों की एकता वही स्थिरता है, जैसे नाम सदृश आठों का गुण- और हनुमान के समान मन की समानता सर्वत्र श्रेय है।

ॐ प्र० २७-हे गुरु जी चन्द्रमा की पूर्ण कला पांचवें चक्र में सब मानते हैं, अतः जैसे अमावस्या को चन्द्रमा का स्थान शून्य है वैसेही जयन्ती का स्थान है, वहां अपान की पूर्ण कला कैसे है इसे कहिये।

ॐ उत्तर-आंटों प्रभाव शाली हैं एक ओर मार कर अप्रसन्न करती हैं-एक ओर जीवित करके प्रसन्न करती हैं- क्षण में

दोनों ओर प्रसन्न करतीं हैं। चन्द्रमा में सूर्यदीप्ति सूर्य में चन्द्र दीप्ति प्रगट करती हैं, रात्रि में दिन और दिन में रात्रि का विकास करतीं हैं, जिससे साधु जन निर्जन स्थान में जयन्ती योगिनी का आश्रय लेते हैं। इसी करके कृष्ण भी जयन्ती रूप जाम्बवती को पाकर पूर्ण कला को धारण किये, अतः आठों का नाम गुण अनुभव के योग्य है

ॐ प्र० २८-हे गुरु जी इस करके भ्रम रहित हूं, परन्तु इन्द्र द्वारा वृन्द के ऊपर सात दिन वर्षा का कारण क्या है।

ॐ उत्तर-हे प्रिय इन्द्र के आधीन सातही समुद्र सातही जल राशि है, जैसे अज्ञानो को सात चक्र जो जड़ प्रकृति है वही अनुभूत होता है न कि जड़ता से रहित जो आठवाँ इन सातों का आधार है। अतः इन्द्र उस कृष्ण की परीक्षा करते हैं कि आठवाँ बड़वाग्नि का रूप हैं अथवा नहीं, यदि होंगे तो जल समूह को भस्म करेगें अथवा डूब कर मर जांयेगे। जैसे कुण्डलिनी साधक की परीक्षा करती कि योग की चेष्टा है अथवा भोग की, अर्थात जिसे जो रुचता है उसे वह देती है।

ॐ प्र० २९-हे गुरु जी कुण्डलिनी का मुख नीचे होने का क्या कारण है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर–जैसे गुण रहित संधि उस गुण रूप असंधि का विस्तार करके मौन हो गयो विषें स्थित है, वैसे यह भी मानो प्राण के भोग निमित्त नवो द्वार अपना द्वार बंद करके नीचे को मुख किये योग विषें स्थित है। अर्थात योग विषें भोग नहीं रुचता और भोग विषें योग नहीं रुचता है। अतः प्राण भी भोग से विमुख योग विषें युक्त होकर जागृत करके एकता करता है। इस समानता विना विषमता से असमर्थ है, जैसे मूर्छा मुख तपस्विनी के प्रति ठहरने में पवन असमर्थ हैं। अर्थात इन दोनो का एक रूप है जैसे प्राण और पवन का एक रूप है, किन्तु स्थान का भेद है जैसे नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे को उलट पलट होता रहता है। यद्यपि सो संधि इस असंधि से असंग है जैसे कृष्ण से चन्द्र-मेघ से विद्युत-इस शिव से सो शिव- ओम्कार से चन्द्रकार-ऐसेही अहं से धारण प्रतीत है। परन्तु सर्वों का सिद्धांत सर्वों के प्रति वही है जिससे सब अपने ही विषें आत्म परायण हैं. अर्थात जिस अपने आत्मा विषें ब्रह्मा हरि शिव श्री तथा इत्यादि हैं वही प्राण अहंकार इत्यादि कुण्डलिनी विषें है जिससे सब योग युक्त और सबों को सुगम है। जैसे उसी आत्म स्वरूप से बलि बावन समान हैं किन्तु निरन्तर से अन्तर अनिश्चय से चल प्रतीत है, जैसे योग से समानता भोग विषें विषमता है वैसे जड़ विषें जड़ प्रतीत है।

ॐ प्र० ३०-हे गुरूजी आप की युक्ति समझने विना बुद्धि मानो सूक्ष्म रहती है-जैसे दो तट के मध्य सो संधि, किन्तु स्थूल के से बुद्धि सदा विशाल बन जाती है, जैसे तट रूप

असंधि के अभाव में संधि सो आत्मा है, जो हम ऐसे अबोध को भी सुगम है। परंतु सूर्य के समान प्राण पृथक भी है उससे कुण्डलिनी से प्रयोजन क्या इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर०–जैसे पृथक में कुयोग-दो की एकता योग-तीनों की एकता श्रेय है। वैसे प्राण अपान कुण्डलिनी इन तीनों की एकता महा शांक्रांति है जैसे चद्रमा सूर्य अग्नि करके है। अर्थात सूर्य की सोम संक्रांति-सोम की सूर्य संक्रांति-सूर्य की अग्नि संक्रांति अग्नि की सूर्य संक्राति है, जैसे अपान विषे प्राण-प्राण विषें अपान-संधि विषें दोनों और दोनों विषें संधि है। अतः तीनो से सम्बंध है किन्तु संधि के निश्चय से पृथक हो अथवा एकत्र वहाँ चिन्ता नहीं है, परंतु इस विना प्रति भाप द्वारा प्रत्यक्ष प्रतिबंध होता है। जैसेमन द्वारा स्वरूप-साधक द्वारा सिद्ध तथा जानकी द्वारा राम अनुभूत है। वैसे कुण्डलिनी द्वारा प्राण का प्रतिबंध है, छुड़ाने विना प्राण अपान की एकता नहीं होती है जिससे जागृत करना श्रेय है। जो नहीं कर पाते वह सन्यस्त करके अपान रूप शिषा प्राण रूप सूत्र को त्याग कर सुषुम्ना रूपदंड का आश्रय लेते हैं, बहुत से सत्यसंग द्वारा भ्रम का अभाव करते हैं। जो तीनो में असमर्थ है, तिनकी शिखा पकड़े हुए जगत में यमोक्ती है जैसे कृष्ण द्वारा कंश, अर्थात् सबो के बोध निमित्त महा पुरुषों का आगमन होता है।

ॐ प्र० ३१–हे गुरुजी यद्यपि इस अमृत से शोक शंताप शान्त है, परंतुनिर्भयता कैसे होती है इसे भी कहिये।

ॐ उ०-हे प्रिय मार्ग निष्कर्मता मुक्ति निर्भयता सर्वों करके निश्चित है। सो बुद्धि के भ्रम से दीनता और भ्रम के अभाव से निर्भयता होती है, जैसे परिक्षित से अनुभूत है, अर्थात अनर्थ का मूल अहं जो इस करके दीनता थी उस में को मिथ्या समझ गये, मानो तत्व विचार को, किन्तु जीव विषै भ्रांति जो मुक्त अमुक्त की थी उसे भी अचल समझ गये, इस जीव के गमना गमन का भ्रम मिट गया। अर्थात गमना गमन करने हार मो भ्रम से कल्पना अहं करके होती है वह मिथ्या निश्चित है। परिक्षित की प्रसन्नता निर्भयता देख कर शुकदेव भी प्रसन्न हुए, मानो ऐसे ही श्रोता समझने के योग्य हैं, जैसे यह दीनता निर्भयता अनुभव के योग्य है।

ॐ प्र० ३२-हे गुरु जी श्री हरि और चित्त प्राण में भेद अभेद क्या है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर०-जैसे गुण रहित से ब्रह्मांड सब अभेद है वैसे गुण करके भिन्नता का भेद है, इसी गुण रूप का श्री हरि अधिष्ठता है-इहीं दोनों का प्रतिभाप चित्त प्राण सर्वत्र है, जिससे श्री हरि सबों का पूज्य हैं।

ॐ प्र० ३३-श्री हरि में अन्तर क्या है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर ०-हे प्रिय गुण रहित संधि दोनों के प्रति एक है जिससे श्री से हरि और हरि से श्री होने में विलम्ब नहीं होता है। सो दोनों जैसे अगुण से अभेद हैं वैसे गुण करके अभेद हैं। वैसे ही सर्वत्र चित्त प्राण को अनुभव करने योग्य है।

जैसे गुण रूप प्रकृति और प्रकृति रूप ब्रह्मांड-उसी द्वारा शिव अहंकार उसी में भिन्न भिन्न भेद है, परंतु जैसे उस ब्रह्मांड में कंटक रावण, वैसे देह में अहंकार है, सो राम से शांत भये राम मानो अनेक यज्ञ से शोभित हैं- वैसे अहंकार के शांत से विचार अनुभूत है. अतः अनहं होने योग्य है।

ॐ प्र० ३४-हे गुरु जी सब भेष में कौन प्रधान है जिसे धारण किया जाय।

ॐ उत्तर-जैसे मन वचन शरीर से किया भया मंत्र तंत्र यज्ञ इत्यादि आत्मा के प्रति सब समान है वैसे अभेद जो आत्मा है उसके प्रति सब भेष समान है, किन्तु राग से रुचि विराग से अरुचि वस्त्र करके भेष अनुभव के योग्य है।

ॐ प्र० ३५-हे गुरु जी इस करके भ्रम रहित हूं, परंतु ज्ञान विराग की एकता और कर्म ज्ञान का भावार्थ तथा ज्ञान भक्ति का सिद्धांत कृपा करके कहिये।

ॐ उत्तर०-हे प्रिय आत्म देव के समान आत्मा-धुंधुली के समान जड़ भक्ति-उस गौ के समान स्वतंत्र भक्ति-धुंधुकारी के समान विराग-गो कर्ण के समान ज्ञान निश्चित करने योग्य है, जैसे देह से रखा देह बिना दुखी सबों के प्रति सिद्ध है। परंतु ज्ञानि समीप गोकर्ण-जैसे ज्ञान अपने समीप, किन्तु प्रीति प्रतीत बिना धुंधुकारी प्रेत-हो गया-जैसे ज्ञान बिना विराग अनुभूत, प्रीत प्रतीत होने ही दोनों, दोनो से एकता सिद्ध है। वैसे अनहं के बोध से स्वतंत्र भक्ति है जैसे रावण के असंग होते ही विभीषण को [illegible] के [illegible] की प्राप्ति सुगम में सिद्ध है, इसी

तिलक स्वरूप विना स्वतंत्र भक्ति नहीं बनती है, अर्थात नाशिका के अग्र वही है इस विना अहं त्वं से जड़ भक्ति है। ऐसेही द्रोपदी और प्रह्लाद का सिद्धांत अनुभव के योग्य है। अर्थात् जहाँ सभा में द्रोपदी का वस्त्र हरण होने लगा वहाँ सो निश्चित करती-पंच प्राण रूप पाँचो पति मिथ्या हैं, सहकारी भी मिथ्या हैं, ब्रह्मांड सहित अपने भी मिथ्या बन गई, जैसे अहंकार सहित प्राण इत्यादि देह मिथ्या प्रतीत है। किन्तु एक सत् स्वरूप का आश्रय अनुभव मात्र सिद्ध है। मानो अनुभव मात्र जानना ही ध्यान है-शम संतोश पुष्प है-नमस्कार महा पूजा है। ऐसेही प्रहलाद भी जो वस्तु अपने में खड्ग में खंभ इत्यादि में निश्चित किये थे वही नृसिंह में भी निश्चित करते हैं जिससे महा अवद्ध रूप से निर्भय हैं। अतः कर्म का भाव द्रोपदी से ज्ञान का भाव प्रह्लाद से दोनो का भावार्थ एक से भ्रम रहित होने योग्य है। परंतु सो सिद्धांत अहंकार और वाणी का विषय नहीं है, उसे यदि कहा जाय में हूँ सो नहीं बनता है जैसे अपने कंधे पर चढ़ते नहीं बनता है, यदि मैं का अभाव करके अनहं हो सो बोध रूप जानने मात्र है, इसी का नाम ज्ञान दीपक है, अर्थात् विस्मरण होते ही दीपक के समान बुझ जाने का भय है-सर्व काल स्मरण कठिन है। उसे यदि त्वं करके अनहं हो सो भक्ति का रूप बन जाता है, सो आश्रय भाव मणि के समान बुझने का भय नहीं और सुगम भी है जैसे दूसरे के कंधे पर चढ़ना अति सुगम है. किन्तु सुगम और अंस- कठिन का

अन्तर है सिद्धांत दोनो का एक है। परन्तु कंधे पर चढ़ने द्वार अहं सो कर्म ज्ञान भक्ति- इन तीनो में नहीं है जिससे अनहं होते ही तीनो का सिद्धांत एक है। जो अबोध को भी अति सुगम है, अर्थात् सिद्धांत रूप सन्धि सबों के प्रति सर्वत्र सिद्ध है, जैसे नाशि काग्र विषें त्वं पद सुगम से बन जाता है।

ॐ प्र० ३६-हे गुरु जी आप का सिद्धांत मानो अमृत का कुन्ड है-यतः गंगा भक्ति की एकता भी कहिये।

ॐ उत्तर-अर्थ विना दूसरे के अर्थ से गंगा भक्ति दोनो हैं, निम्न गति नम्रता भी समान है, चेष्टा विना दोनो सिद्धांत विषें अटल हैं, पंच विचार से अच्छादित और इससे छुटकारा दोनो से सिद्ध है। शिवपुरी मे गंगा निर्वाण को सिद्ध की, छठवें चक्र में भक्ति भी सिद्ध करती है। अर्थात् आचार रूप ब्रंह्मा का कमंडल-अविचार रूप शिव की जटा, कारण कि रहना न रहना सो सम रूप भक्ति सो समानता है इस विना विषमता है। कुविचार रूप पर्वत जहाँ एरावत द्वारा छेदन भेदन है, सुविचार रूप जन्हु मुनि हैं, पाचवें विचार से अक्षय वट जिससे गुरु-भाव से गंगा निश्चित कीं, अर्थात, प्राण रूप ज्ञान रूप दोनो करके सरस्वती सो अक्षय वट द्वारा हैं, विंध्यवासिनी के स्थान गंगा का वेग प्रबल, कुण्डलिनी के स्थान भक्ति का है, छठवां शिव पुरी-वैसे छठवां चक्र है। जहां प्राण रूप सरस्वती सो दाहिने ओर हैं और अपान रूप जमुना सो बायें भई जिससे वहां गंगा का नाम उर्ध्व वाहनी है, जैसे प्राण स्वरूप विषें

और आपान मूलाधार की ओर छठवें चक्र से होता है। सरजू से एकता करके गंगा उस सातवें स्थान गई, जैसे कर्म का सन्यंस्त करके सातवें स्थान भक्ति जाती है, अर्थात्- पांच कर्ता छठवां अकर्ता है, जैसे पंच विचार रूप युधिष्ठिर सहित पांच उन पांचों से विमुख कर्ण हैं छठवां का रूप। इस कर्ता अकर्ता के समानता से सतवाँ स्थान है, परंतु बलराम के समान वहां अहंकार भी है जो विचार को अमिष्ट करके भक्ति को अपनी ओर ले जाता है-जैसे भगीरथ के भेष में पद्ददा राक्षस गंगा को अपनी ओर ले गया, वैसे अहं ब्रंह्म इस वेष में अहंकार अपनी ओर भक्ति को ले जाता है। अतः हे प्रिय ब्रंह्मा जी की चतुरता तुम जैसे चतुर जन अनुभव करते हैं, अर्थात् नदियों का जड़ समूह गंगा के साथ जाना वहां अनुचित है, जैसे गुण समूह भक्ति के साथ आत्मा के प्रति अनुचित है, इस करके नदियों का समूह पद्ददा नदी में प्राप्त भया, जैसे जड़ता का समूह अहंकार के पीछे होता है जिससे जड़ समूह अनहं से शांत होता है। जब भगीरथ स्मरण किये गंगा कहां गई, उसे गंगा भी समझ गई भगीरथ यह नहीं किन्तु वह हैं, जैसे विचार करके भक्ति भी समझ जाती अहं ब्रंह्मा नहीं किन्तु अनहं सो सो हैं। परन्तु जैसे वहां गंगा सहित सबों का अस्त और गंगा का रहना भी सिद्ध है, वैसेही आत्मा के प्रति भक्ति सहित सबों का अस्त और भक्ति का रहना भी सिद्ध है। जैसे समानता विषमता का रूप है। इसी के बोध से समाधि व्यवहार समान है, वहां गंगा

भक्ति के एकता में भ्रम कहां है जहां अस्त रूप विषमता में एक ही है जैसे "अ,, किन्तु समानता में दोनों हैं जैसे "प,, तथा जड़ समूह मानो 'स, भक्ति मानो 'त्र, ज्ञान मानो 'ज्ञ' अतः ज्ञान के सर्वत्र समान से समाधि व्यवहार समान होने ही योग्य है।

ॐ प्र० ३७-हे गुरु जी इसी भांति सुगम से प्रकृति का स्वभाव भी कहिये।

ॐ उत्तर-प्रकृति करके प्राकृतिक वस्तु जो अनुभूत है वह सबों के बोध निमित्त है इसे प्रथम अनुभव करने योग्य है। जैसे अ से अः तक सोलह अक्षर हैं-क से म तक पचीस अक्षर-य से ज्ञ तक ग्यारह अक्षर हैं-यदि अक्षर से अक्षर का बोध न हो तब वहां दोनों निरक्षर हैं वहां का बोध होना कठिन है। अर्थात् सोलह करके इच्छादि सोलह विकार अस्त है। जैसे नशिका का दाहिना छिद्र बंद बायें से अपान के पूरक में भी होता है जिससे पूरक में सोलह बार ओम्कार का जप है। पच्चीस करके पांचो पंचक अस्त-जैसे नाशिका का दोनो छिद्र बंद उस कुंभक में भी होता है जिससे कुंभक में चौंसठ बार ओम्कार का जप है। मानो आठ विद्या छप्पन अविद्या जैसे शुभ अशुभ दोनो कर्म शांत हैं। ग्यारह करके आत्म रूपता शिव रूपता है-जैसे बायां छिद्र बंद दाहिने से प्राण के रेचक में भी होता है जिससे रेचक में बत्तीस बार ओम्कार का जप है मानो पूरक का रेचक दुगुण है। जिसे चेतन शक्ति सबों को शब्द द्वारा शिक्षा देती

रहती है, अर्थात मर तुम परम यार हो। लव-सूक्ष्मता धारण करो। सख-मुझसे सखित्व भाव करो। सह-सहकारता करो। सत्रङ्ग-विस्तार सहित आदि मध्य अंत मेरा ही रूप है। यद्यपि रामं विद्धि परं ब्रह्म-परन्तु वैसेही-मां विद्धि मूल प्रकृतिं, रामो न गच्छति न तिष्ठति-मय्यैव चरितयन्यपि। अर्थात् मैं कर्ता सो अकर्ता। अतः अहं प्रकृति होते ही आद्य पद सर्वोत्तम सो सुगम है। जिसपर भी प्रत्यक्ष प्रमाण- कमल के समान विश्व-जल के समान मैं-सूर्य के समान सो अतः जल विना कमल-मुझ विना विश्व शुष्क सबों को अनुभूत है। किन्तु सूर्य जल दोनों से कमल की प्रसन्नता है-वैसे मुझ और सो इन दोनों से विश्व की प्रसन्नता है यही समानता है। किन्तु एक को निश्चय करना वही विषमता है। जिससे गंगा भक्ति का अस्त और रहना भी दोनो भेद सिद्ध हैं।

ॐ प्र० ३८-हे गुरू जी आप के कृपा से मैं भी कृतार्थ हूँ, अतः सत का रहना किन्तु असत का रहना समान से समाधि व्यवहार समान है इसे समझ लिया, परंतु समाधि में अन्न जल से प्रयोजन नहीं वहां सुवर्ण मिट्टी समान होने योग्य है किन्तु व्यवहार में सुवर्ण मिट्टी कैसे समान है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर अन्याय पूर्वक सुवर्ण सो मिट्टी के समान है और न्याय पूर्वक मिट्टी सो सुवर्ण के समान है, इस राम रूपी विचार से सुगम है।

ॐ प्र० ३९-कल्प वृक्ष और विवेक की एकता कैसे है।

ॐ उत्तर-नीच ऊँच शत्रु मित्र दोनों को समान हैं-जो जाता सो सुगम से प्राप्त करता है। परन्तु धर्म को अर्थ-मोक्ष को काम प्रतिबन्ध किये रहता, अतः अर्थ को पूर्ण करके अर्थ को निवारण करता है जिससे दोनों में एकता हो, अर्थात् पुनः अर्थ के चेष्टा को निवारण करता है इस करके दोनों में एकता कैसे प्रतीत है जैसे अर्थ रूप शत्रुहन धर्म रूप भरथ से है। वैसे-कामना को पूर्ण करके इसे भी निवारण करता है जिससे इनमें भी एकता हो, जैसे काम रूप लक्ष्मण और मोक्ष रूप राम से है। इस करके सिद्ध से अर्थ काम एकत्र किन्तु धर्म मोक्ष एकत्र होते हैं, जैसे भरथ से राम और शत्रुहन से लक्ष्मण मिलते हैं अतः चारो समान से धर्म मोक्ष की एकता और जड़ता रहित संधि स्वरूप की एकता अनुभव के योग्य है।

ॐ प्र० ४०-हे गुरु जी कर्म ज्ञान भक्ति-इन तीनो की एकता सुगम से कैसे बनता है कृपा करके इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-शरीर के किसी अंग से कार्य हो वही कर्म है, उसके साथ हरि का नाम गुण मत्रों का स्मरण वही भक्ति है, शरीर से पृथक आत्मा को निश्चय करना वही ज्ञान है। जैसे वल्मीक की जीभ मरा मरा से युक्त और स्वरूप विषै मन की स्थित. अतः तीनो की एकता सुगम से सिद्ध है जिससे मुनि के गुण में पूर्ण शक्ति की सिद्धाई बन गई। इस महा कारण को धारण करने योग्य है।

ॐ प्र० ४१-हेगुरु जी मन वचन शरीर-इन तीनों के कर्म

मौन से मुनि है-अतः उसमें कर्तापन कैसे बनता इसे कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय यथार्थ से अमौन-किन्तु अयथार्थ से मौन सो मुनिनाथ हैं, यदि दोनो से मौन हो सो आकाश के समान शून्य उसे मुनि नाथ कैसे कहा जायेगा। अतः ब्रह्मा हरि शिव इत्यादि इसा करके सब महा श्रेय हैं, इसी करके वाल्मीक के स्थान जानकी का निवास भी प्रतिष्ठित है, इसी करके हरि भी अनेक रूप धारण से प्रतिष्ठित हैं, साधु जन भी इसी करके भ्रम भय से रहित हैं। जैसे वाल्मीक से तुलसी-उन्हें विष्णु यशा होने में आश्चर्य क्या है, उनकी स्त्री जो कारण के समान प्रतीत है उसे सुमति नाम से कल्कि भगवान की माता होने में आश्चर्य क्या है, जैसे हरि का मैं हरि मेरे इसके सिद्ध से हरि का पुत्र और हरि का पिता बनने बनाने में आश्चर्य क्या है, वैसे ही गुण अगुण के समानता से त्रिभेद विषें उदय अस्त होते हैं। सो सब जैसे गत दिन का अशुभ जो अयथार्थ है उसे आज दिन का शुभ जो यथार्थ है इससे शांत करते हैं। किन्तु तुम जैसे को अशुभ जो प्रपंच है और शुभ जो आत्मा है इसके प्रति उसे आज का अभी शांत करके अचल होने योग्य है।

ॐ प्र०४२- हे गुरु जी कैसे और कहां शांत रूप से मन अचल रहता है।

ॐ उत्तर- जैसे अर्जुन और कृष्ण द्वारा रथ के पताका पर हनुमान हैं- वैसे बुद्धि और विचार द्वारा नाशिका के अग्र विषें मन अचल होता है। इस विना अन्यत्र भटकते रहता है,

इस पर होते ही इससे रुचि अन्यत्र से अरुचि अचल होती है। वहां तीनों का लक्ष्य एक से सब त्रिभेद एकत्र होते हैं। जैसे वेद शास्त्र पौराण-तथा शास्त्र गुरु अपना एक लक्ष्य होता है, तथा जैसे शुभ अशुभ शान्त से साधु सन्यास पंडित-तीनों का लक्ष्य एक है। यद्यपि मन के विषमता में बुद्धि विचार की एकता करना पड़ता है और बुद्धि के विषमता में मन विचार को और विचार के विषमता में मन बुद्धि को- परंतु प्रथम वहां मन रहना श्रेय हैं।

ॐ प्र०४३-हे गुरु जी यद्यपि गंगा भक्ति दोनों अति निर्मल हैं, परंतु आप की युक्ति मानो दोनों का इष्ट देव है। अतः यत्न युद्ध की एकता कृपा करके कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय रथ के समान शरीर-पताका के समान नाशिकाग्र-हनुमान के समान मन-अर्जुन के समान बुद्धि-कृष्ण के समान विचार- दोनों अश्व के समान प्राण अपान दोनो ओर के सेना समान प्राण अपान के नाडियों का समूह अनुभव करने योग्य है। जैसे अनुभव से भीष्म महा प्रसन्न, अर्थात् जैसे बाण का लक्ष्य निर्वाण का लक्ष्य दोनों का आचार्य द्रोणाचार्य हैं वैसे वह भी हैं।. किन्तु विषमता करके दश दिन महा प्राक्रम से हैं, जैसे विषमता से दश रुद्रों की भांति इन्द्रियां प्रबल रहतीं हैं, परंतु मन के समानता से शिथिल हो जाती हैं, जैसे हनुमान के अचल से भीष्म। पाण्डव दल कम-कौरव दल अधिक-जैसे प्राण के तीनों चक्र पर बीस दल और अपान के तीनों

चक्र पर तीस दल हैं। किन्तु पताका के प्रति कृष्ण का लक्ष्य होते ही दोनो दल समान रूप से शांत हैं, जैसे नासिका के अग्र विचार का लक्ष्य होते ही इन्द्रियादिक सहित शुभ अशुभ शांत होते हैं। अश्व दाहिने होते हैं तब भी एक साथ–बायें होते हैं तब भी-नीचे ऊपर होते हैं तब भी प्राण अपान के समान एक साथ हैं। किन्तु विषमता से पृथक होते हैं जैसे संधि स्वरूप के निश्चय विना मन बुद्धि विचार पृथक होते हैं जो सबको अनुभूत है, संधि के निश्चय विना यत्न युद्ध बना रहता है। जैसे अज्ञान दशा में स्थूल शरीर के अभाव में शेष पुर्य्यष्टक बना रहता जिसे जीव कोप कहा जाता है जिससे नीचे ऊपर भ्रमण और स्थूल भी होते रहता है। अर्थात् भूमि रापो नलोऽवायुःखं मनो बुद्धि रेवच, अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा। जड़ जल तेज वायु आकाश तथा मन बुद्धि अहंकार-इसी आठ का नाम पुर्य्यष्टक है। जैसे अज्ञान दशा में महाभारथ उसके अन्त में-पांच तत्व का रूप युधिष्ठिर सहित पांच और तीन के रूप से कृतवर्मा कृपाचार्य अश्वत्थामा यह आठ शेष हैं मानो ब्रह्मा का प्रतिभाष बुद्धि हरि का मन-शिव का अहंकार यह तीन गुण के स्वभाव से पांच विषें स्थित हैं। जिससे ब्रह्मा हरि शिव के समान सबों की स्थिरता नहीं है। परंतु जिस ज्ञान दशा में सूक्ष्म स्थूल दोनों जड़ करके एक हैं वहा उस संधि प्रति सब असंधि समान हैं. जैसे कृष्ण के प्रति तीन पांच सब।

ॐ प्र० ४४-हे गु जी युद्ध में अंग बचाने को कवच है-

इस यत्न में क्या है इसे भी कहिये ।

ॐ उत्तर-शरीर से जो कुछ कार्य हो सो सब आत्मा के प्रति समर्पण करना यही महा कवच है और जैसे युद्ध में मारण निवारण दोनो करके श्रेय है वैसे यत्न में कर्ता अकर्ता दोनो करके श्रेय है जिसे कर्म ज्ञान कहा जाता है तथा प्राण अपान की एकता है। दोनो हाथ के युद्ध समान नेत्र मन से पठन स्मरण-इन्द्रियों करके निश्चित हैं।

ॐ प्र० ४५-हे गुरु जी चेतन विना पांचो तत्व जड़ करके हैं-जैसे कृष्ण विना युधिष्ठिर सहित पांचो अनभूत हैं और पांच विना चेतन से कार्य नहीं बनता है. जैसे उन पांच विना कृष्ण से नहीं बनता है, इस करके दोनो पक्ष में छव होते हैं। अतः किस एक विना कार्य के साधन में पांच ही हैं, अर्थात न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ।

ॐ उत्तर-प्रिय जैसे युद्ध में कृष्ण सहित भीम अर्जुन नकुल सहदेव-यही पांच न्याय अथवा अन्याय करें, परंतु अयत्न रूप से युधिष्ठिर असंग हैं। वैसे चेतन सहित वायु तेज जल जड़-यही पांच यत्न के कर्तापन में हैं किन्तु अयत्न रूप से आकाश असंग है। अर्थात् अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्. विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् । अधिष्ठान शरीर-कर्ता जीव-इन्द्रिय कर्म तथा पंच प्राणों की चेष्टा क्रम-पांचवां दैव सो चेतन है-जैसे वहां कृष्ण हैं। अतः यत्न में पांच किन्तु अयत्न में आकाश सहित छव हैं। जैसे वह युधिष्ठिर सहित छव हैं। परंतु [illegible]

एक है यत्न हो अथवा अयत्न। जैसे वहाँ यत्न अयत्न का आधार कारण प्रतीत हैं। अर्थात् एक हो वहां भी अनेक वहां भी किन्तु सो आधार मात्र सर्वों के प्रति स्थित है।

ॐ प्र०४६-हे गुरु जी किसी करके जीव कर्ता-किसी करके शरीर-किसी करके दोनो कर्ता हैं इसमें आप क्या निश्चित करते हैं।

ॐ उत्तर-हे प्रिय वायु तेज से सुविचार आचार सुर स्वभाव है जिसे मिष्ट कहा जाता है। जल जड़ से कुविचार अनाचार असुर स्वभाव है जिसे अनिष्ट कहा जाता है। आकाश सदृश समानता जिसे मिश्रित कहा जाता है। सो तीनो भेद यही तीनो गुण का रूप है, अतः तीनो गुण का कर्म पांच ही विषें है, जिससे गुण रहित के प्रति तीनो भेद समान है, वही संधि रूप जीव तथा शिव है, सो पांच के संग से करता और असंग से अकर्ता है। यद्यपि जड़ता विषें जड़ और चेतन विषें चेतन प्रतीत है जैसे कृपण, किन्तु दोनो से युक्त अयुक्त है, जैसे संधि से जरासंधि वज्र के समान है संधि बिना वही तृण के समान है अतः जैसे असंग से जीव महा अकर्ता है-वैसे जड़ता के कारण पंच भूत महा अकर्ता है-वैसे पंचभूत से शरीर भी अकर्ता है, जिससे जड़ चेतन के संग को निश्चित करना उसे अज्ञान कहा जाता है, किन्तु दोनो को असंग करना उसे ज्ञान कहा जाता है। है। परन्तु विज्ञान जो अबोध विषें ज्ञान से प्रधान प्रतीत होता है सो अन्यथा है, अर्थात अज्ञान जो है वही विज्ञान बनता है और वही अज्ञान बनता है, जैसे नीचे से ऊपर और ऊपर

से नीचे, वही युक्त अयुक्त मिथीत है, परंतु असंग रूप का ज्ञान सर्वत्र अपने स्वभाव से अचल है उसी का नाम ज्ञान स्वरूप जीव शिव है ! अतः जो कुछ विवाद है सो सब अविवेक में है जैसे तुम्हारे तीन प्रश्न के समान त्रिभेद का विस्तार अज्ञान से उदय है ज्ञान से शांत हैं, जिससे विवेक सर्व काल निर्विवाद है। जैसे सुर स्वभाव रजोगुण वही ब्रंह्मा है, असुर स्वभाव तमोगुण सो शिव हैं, आकाश रूप सतोगुण सो हरि हैं, सो तीनों भेद पांच तत्व के रूप हैं न कि अन्यत्र से, वैसे कुंभक सतोगुण-रेचक रजोगुण-पूरक तमोगुण है, परन्तु गुण रहित होते ही उसे हरि शिव जीव आत्मा में भ्रम भेद कहां है, किन्तु नाम रूप से रहित उसका नाम करण करना भी अज्ञान है।

ॐ प्र० ४७-हे गुरु जी यद्यपि आप की युक्ति महा बोध रूप है, परन्तु जैसे जल को जलदी में कोई घेर लिये है सो हटाने पर भी पुनः आकर घेर लेती है वैसे ही जगत जीव की स्थिति प्रतीत है, अतः इसकी उपाय सुगम से कहिये।

ॐ उत्तर-यद्यपि श्रवण विषें गोचरी मुद्रा शब्द के ज्ञान को अचल करती। भूचरी मुद्रा नाशिका विषें स्वरूप ज्ञान को अचल करती है। चांचरी मुद्रा नेत्र विषें अदृश्य को अचल करती है। खेचरी मुद्रा मुख विषें प्रसन्नता को अचल करती है। उन्मनी मुद्रा नाभि में सिद्धाई को अचल करती है। परन्तु एक मन करके सब सुगम है, जैसे मन के प्रसन्न से मुख विषें प्रसन्नता है-इस बिना उदासीनता है, सो मन आत्मा के प्रति

होते ही जगत न जाने कहां गया, जैसे दूर फेकने से काई, इस विना घेरे रहती है, इसी का नाम राम पलट है, अर्थात् आत्मा के सन्मुख- जगत से विमुख। यद्यपि पन्द्रह दिन के उपास समान शत प्राणायाम है और सहस्त्र प्राणायाम के समान क्षण मात्र हरि का स्मरण है, सो हरि आत्मा एक ही हैं, मानो तिल रूप हरि तेल रूप आत्मा, जिससे आत्मा अति सुगम जो सबको अनुभूत है, जैसे गुण रूप तिल गुण रहित तेल है। यद्यपि र अ म,, की एकता आत्म स्वरूप के समान अवद्ध दशा को प्राप्त करती है, किन्तु आदि में श्री अंत में राम इसकी एकता से महा अवद्ध बन जाता है, मानो जहां इसके पूर्ण रूप की स्थित है उसी की प्रधानता होती है, जैसे श्री हरि वहां हरि हैं-अन्त में श्री शिवः वहां शिव हैं। ऐसे ही सर्वत्र है सो सब एक मन के निश्चय से सुगम है, अतः आत्मा के प्रति मन को अचल करो।

ॐ प्र० ४८-हे गुरु जी यद्यपि मन करके सुगम है-जैसे नेत्र करके दृष्य, परन्तु उस आत्मा के प्रति मन इत्यादि सर्वो का कर्म स्वाहा के समान है तब कार्य का साधन कैसे बनता है जो आप जैसे स्वरूप ज्ञान में होते हुए साधन करते रहते हैं-इसे भी कहने की कृपा कीजिये।

ॐ उत्तर-जैसे भोजन किया हुआ शरीर में क्षय होता है-परन्तु भोजन की सत्ता देह में प्रकट होती है, वैसे कार्य की सत्ता प्रकट होती है जिससे साधन समर्थ होता है। जैसे कार्य के सिद्ध असिद्ध में सम रहने से निर्बंधन और मन भी प्रसन्न

रहता है।

ॐ प्र० ४९-हे गुरु जी सुर स्वभाव असुर स्वभाव दोनो की गति प्राण अपान के समान हैं अथवा अन्य भी है सो कहिये।

ॐ उत्तर-हेप्रिय नीचे पृथ्वी जड़ रूप से-ऊपर मेघ जल रूप से-इसके ऊपर सूर्य मानो दोनो को दबाये रहते हैं, जैसे चित्त अहंकार को विचार दबाये रहता है। इस कारण असुर स्वभाव के प्राणी मरने पर मेघ मंडल के ऊपर जाने में असमर्थ हैं, जैसे पांचवें चक्र के ऊपर अपान जाने में असमर्थ है, वहां से गिर गिर के नीचे जलचर थलचर योनियों में जन्मते मरते रहना है, जैसे अपान नीचे से नीचे जाता और लौट कर पांचवे तक आता भी है जब तक प्राण के स्थान नहीं जाता है, जैसे असुर स्वभाव त्यागे विना सुर स्वभाव धारे विना सो। अर्थात् आसुरी योनि मा पन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि। परंतु उस हरि रूप संधि के प्रति मन होते ही कैसे समर्थ है जैसे सुर स्वभाव के प्राणी सूर्य विषें तथा ऊपर से ऊपर जाते-सो कदापि नीचे नहीं गिरते हैं, जैसे दूसरे चक्र के नीचे प्राण कदापि नहीं जाता है। अतः मन को संधि विषें स्थित करने योग्य है, इसी विना नीचे ऊपर होते रहना है जैसे उसके स्थान सो और उसके स्थान सो।

ॐ प्र० ५०-हे गुरु जी चार गुण ब्रह्मा विषें-पांच गुण शिव विषें होने से हरि गुण रहित हैं, परन्तु सो हरि सतो गुण कैसे हैं, जब नव गुण से नव पुर की देह सर्वत्र सिद्ध है, इसे

कृपा सहित कहिये ।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जैसे अयत्न में नव गुण है वैसे यत्न में आठ गुण हैं-अतः उस एक के वचत से हरि सत्व गुण से हैं जिससे हरि गुण अगुण से हैं, जैसे गुणरहित संधि वही गुण रूप असंधि होती है जिससे तुम ऐसे गुण अगुण के समानता को धारण करते हैं। परन्तु गुण रहित के बोध विन सो समानता कदापि नहीं बनती है, अर्थात् विस्मरण होते ही जड़ता का संग बन जाता है-जैसे स्मरण होते ही अकस्मात सर्व त्याग बन जाता है जैसे नेत्र के खोलने से, अर्थात् वही दृश्य जाने बिना सांच किन्तु जानते ही मिथ्या प्रतीत होता है, अतः प्रत्येक प्राणी का देह सूक्ष्म हो अथवा-स्थूल सब असंधि रूप है वैसे सबों के प्रति संधि है इस विषै मन होते ही उस असंधि से असंग हो जाता है जिससे संधि भी असंग और हरि भी गुणातीत हैं वैसे सबों के प्रति निश्चित हैं। जिससे सब गुणातीत हैं किन्तुभ्रम से गुण युक्त हैं। अतः भ्रम रहित होते ही संधि के प्रति इन असंधियों कास्वभाव मानो थक कर बैठ जाता है। कारण कि जैसे महात्मावों का वर शाप अचल होता है वैसे ज्ञान अज्ञान ब्रह्मा जी का अचल किया है, मानो संधि करके ज्ञानी असंधि करके अज्ञानी हैं इन दोनों के हंसने निमित्त बनाये हैं। अतः अपने मन को संधि स्वरूप पताका पर अचल करो जहां मन सहित सब प्रसन्न रहते हैं।

ॐ प्र० ५१-हे गुजी इस करके महान भ्रम नष्ट भया-परन्तु सम संतोष सत्संग विचार-इन चारो का एक सिद्धांत कैसे हैं इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जो सिद्धांत सवों के प्रति है वही चार के प्रति है जिससे वेद शास्त्र पौराण इत्यादि सवों का सिद्धांत एक है। जैसे देह में दो कर्ण-दो नेत्र दो नाशिका एक मुख एक लिंग एक गुदा, इस नव पुर को तथा नव गुण को तथा नवधा भक्ति को तथा नौ योगेश्वर को-नव कहा जाय अथवा एक-किन्तु नाम रूप से भिन्न भिन्न हैं परन्तु सो सिद्धांप रूप संधि सवों के प्रति एक है। वही पौरुप रूप पुरुप है, जैसे गुण रूप प्रकृति सो अवला जो सबको अनुभूत है एक पुरुप को अनेक स्त्री हैं-मानो सवों के वोध निमित्त कृष्ण से प्रसिद्ध हैं, तथा वही सिद्धांत जीव नाम से उसे अनेक शरीर ग्रहण त्याग प्रतीत हैं, किन्तु स्त्री मात्र को एक पति हैं। जैसे श्रवण अपने पति के प्रति हैं, नाशिका अपने पति के प्रति, वैसे नेत्र इत्यादि मन बुद्धि प्राण अहंकार इन्द्रिय समूह सब अपने अपने पति के प्रति हैं, जैसे नवधा भक्ति नव योगेश्वर देखने में भिन्न भिन्न हैं परन्तु अपने अपने सिद्धांत रूप पति में परायण हैं न कि एक दूसरे विषें, मानो इसी ज्ञान भक्ति के वोध निमित्त पुरुप रूप कृष्णऔर अवला रूप स्त्रियां अनभूत हैं। यद्यपि पुरुष द्वारा असंग सो ज्ञान रूप विपमता प्रतीत है और स्त्री द्वारा संग सो भक्ति रूप समानता प्रतीत है, किन्तु संग असंग दोनों विषें है ऐसे ही

ज्ञान में भी सम भक्ति में भी सम है जिससे चारों में प्रथम सम है। जैसे सम रूप राम संतोष रूप कृष्ण सत्संग रूप कल्कि विचार रूप शिव हैं। परन्तु चारों का सिद्धांत एक है, अर्थात आत्मा के सिवाय अन्य का रहना न रहना समान से वही समानता है उसे सर्वत्र समान होने ही योग्य है। वैसे आत्मा के सिवाय अन्य से अरुचि जैसे इन्द्र इत्यादि के भोग रूप पदवी से, किन्तु आत्मा से रुचि, वही परमसंतोष है। वैसे सत्स्वरूप आत्मा के सिवाय अन्य से असंग वही सत्संग है। वैसे जहां आत्मा अचल और अन्य सो चल निश्चित है वही निर्मल विचार है।

ॐ प्र० ५२-हे गुरु जी महा भ्रम नष्ट हुआ, परन्तु महीनों में अगहन ऋतु में वसंत किस कारण श्रेय हैं।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जैसे किसी को एक शत तत्व निश्चित है, किसी को पचास, किसी को तीस, किसी को पचीस, किसी को चौवीस, किसी को बीस, किसी को पांच, किसी को चार, किसी को एकही आकाश मूल है। जैसे एकही गुण एकही अगुण, वैसे यह भी है जो सबको अनुभूत है। अर्थात अगहन में वृक्ष इत्यादि सबों का रस संकुचित होकर अन्तर्मुख होता है, जैसे संकुचित से बलि के प्रति वामन जी प्रतीत हैं। वसंत ऋतु होने से बहिर्मुख होता है, जैसे बलि के हाथ से कुश वामन जी के हाथ पर होने ही विराट अनुभूत हैं। मानो अनहं रूप वामन और अहं रूप विराट हैं, वैसे अनहं रूप अगहन और अहं

रूप बसंत है। अतः शून्यता से अगहन प्रधान है और अहं ब्रह्म से विराट के समान वसंत प्रधान है। अर्थात ज्ञान विना अज्ञान सो अज्ञान करके है, जैसे अगहन वसंत आकाश। परन्तु ज्ञान का सम्बन्ध होते ही विज्ञान हो जाता है, किन्तु ज्ञान अपने स्वभावही से रहता है, जैसे प्रह्लाद के सम्बन्ध से खड्ग खम्भ हुरण्यकशिपु प्रतीत हैं, परन्तु प्रह्लाद अपने स्वभावही से हैं। तथा जाग्रत रूप कार्तिक-स्वप्न रूप माघ-सुषुप्ति रूप वैशाप-तुरीया रूप अधिक मास-किन्तु शून्यता तुरीयातीत है।

ॐ प्र० ५.२-हे गुरु जी आप की युक्ति मानो ज्ञान का रूप है जिसे समझ कर मन की प्रसन्नता मन ही जानता है जैसे आश्चर्यवत आत्म स्वरूप जिसे निश्चित करता हूं। अर्थात गुण रहित ब्रह्म से गुण रहित संधि सो दोनों समान होते हुए जीव ब्रह्म कहे जाते हैं, जैसे वायु रूप प्राण और वायु रूप मन एक होते हुए दो भेद से प्रतीत हैं, मानों इसी के बोध निमित्त 'अ' और इसकी संधि है। अतः जैसे नाम रूप से रहित तथा स्त्री पुरुष के भेद से रहित ब्रह्म अनिर्वचनीय है वैसे सो संधि परू जीव है, जिससे सर्वों के प्रति समान है। असंग होते हुए प्रपंच विषें उपाधि से संग प्रतीत होता है, चेष्टा से रहित किन्तु दोनों ओर चेष्टा से प्रतीत होता है, मानों उधर की चेष्टा ब्रह्म भाव को सिद्ध करती है और इधर की चेष्टा उपाधि को सिद्ध करती है। अतः सर्वों के बोध हेतु ब्रह्म के समान ब्रह्मा जी और जीव के समान कश्यप जी अनुभूत हैं। अर्थात अद्वैत

की भांति अदिति और द्वैत की भांति दिति हैं सो कस्यप जी दोनों ओर सिद्ध करते हैं ऐसेही मानो शुभ अशुभ इच्छाही जीव की भार्य्यां हैं। परन्तु जैसे कस्यप जी को दोनों पक्ष समान और संग होते हुए असंग हैं और मुक्त स्वरूप अबद्ध हैं, ऐसे जीव भी निश्चिन्त है। यद्पि अद्वैत से निर्बन्धन और द्वैत से बन्धन प्रतीत हैं, जैसे अदिति और दिति से। परन्तु द्वैत जो भेद है वही भेद भक्ति है सो भेदही उस अद्वैत को सिद्ध करता है, जिससे बलि इत्यादि नीचे और इन्द्र इत्यादि उपर सो दोनो पक्ष समान से अबद्ध हैं। यद्यपि उसी गुण के उपाधि में तीनो कोष्ट हैं, मानो अहंकार सो शिव-प्राण सो हरि-अपान सो ब्रह्मा, वही त्रिभेद सर्वत्र है, किन्तु सो संधि रूप जीव सबों के प्रति असंग और अबद्ध है। अर्थात् देही नित्य मवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत। अतः हे गुरु जी प्राण अपान के समान जय विजय कैसे कहां से हैं इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-हे महा प्रिय इसी भांति मन बुद्धि के रगड़ से विचार होतेही क्षण मात्र में भ्रम को नष्ट करके संधि सरूप को एक करता है। अर्थात गुण रहित होतेही जीव शिव संधि हरि इत्यादि में भ्रम भेद कहां है, जैसे प्राण द्वारा प्राणायाम सो भी उसी संधि को सिद्ध करता है और ज्ञान द्वारा विचार सो भी उसी संधि को सिद्ध करता है, जिससे संधि प्राणेश्वर है, इसी कारण हरि भी प्राणेश्वर हैं, जैसे कर्मों में संध्या। उसी को आत्मा शिव जीव धर्म अचल सनातन श्री सनातन

भी कहा जाता है, अतः उस संधि के समीप जिनका मन है उसे सर्वत्र समीप है इस बिना अन्यत्र पृथक रहता है जैसे धर्म से विमुख अधर्म और सत्य से विमुख मिथ्या। अतः उपाधि सो मिथ्या और उपाधि रहित सत्य सो सर्वत्र सिद्ध है। परन्तु भोग की चेष्टा से उलटा होते ही नीचे ऊपर होनेही योग्य है, जैसे भक्ति का अधीकार नीचे और अधीकार ऊपर है मानो हरि का मैं नीचे और हरि मेरे ऊपर है। उस नोचे का भाव जहां अचल होता है वहां अन्य होते हुए नहीं के समान हैं, जैसे लव कुश और जय विजय के प्रति बड़े बड़े लक्ष्मण हनुमान इत्यादि अनुभूत हैं। वैसे जहां ऊपर का भाव अचल होता है सो श्री हरि को पुत्र पतोह् बनाने में समर्थ है जैसे दशरथ विष्णु यशा इत्यादि अनुभूत हैं। परन्तु जैसे प्राण रूप जय अपान रूप विजय हैं, वैसे ऊपर में दशरथ विष्णु यशा प्राण रूप हैं और जनक विदूरथ अपान रूप हैं, मानों दोनों पक्ष समान हैं-जैसे प्राण दाता पिता ज्ञान दाता गुरु-किन्तु अन्य दाना के समान गुणअगुण से अन्य भी प्रतीत हैं। कभी नीचे कभी ऊपर कभी इधर कभी उधर, मानों गीदड़ से शिक्षा लिये हैं, जैसे अवद्ध का स्वभाव वामन जी और वामन का स्वभाव अवद्ध पाते हैं। अर्थात् नीचे अथवा ऊपर जिधर को मुख करता है वहां अपने आधर शाखा का आश्रय लिये रहता है किन्तु जाने बिना अबोध है, बोध होतेही सो गीदड़ भी अवद्ध होने में समर्थ है, जैसे शाखा रूप नासिका आधार रूप संधि है। यद्यपि यह मन

जहां से जाता और जहां उपस्थित होता है और जहां ठहरता है वहीं वहीं संधि सर्वत्र है, जैसे जिधरही मुख उधरही सो है किन्तु नासिका के अग्र महा संधि है। यहां मन होते ही जीव ब्रह्म एकत्र होते हैं जैसे विवेक रूप विश्वामित्र के आतेही जानकी सहित सब एकत्र हैं। वहां अपर समूह शांत होनेही योग्य हैं, जिससे उसी का आश्रय सब लेते हैं। जैसे भादों शुदी तीज को कल्कि जी का गर्भाधान और वैशाप शुदी द्वादशी को जन्म तिथि है, आठ महीना नव दिन, जैसे यत्न में आठ अयत्न में नव, परन्तु सिद्धांत रूप संधि दोनों विषें एक है, मानों इसी महा संधि के बोध हेतु कल्कि भी प्रगट होते हैं, अतः निश्चित करने योग्य है। उन्हीं कल्कि जी के दोनों पुत्र जय विजय हैं। सो वही नहीं किन्तु ऐसेही कल्कि ऐसेही जय विजय अनेक और अनेकों बार होते रहते हैं। अतः अपने आत्मा में सावधान रहो, यद्यपि इधर की चेष्टा चल से उपाधि है जैसे अनेक कल्पना से विकल्प है. उधर की चेष्टा अचल है जैसे एक आत्म स्वरूप का दृढ़ संकल्प. परन्तु नृसिंह जी को खम्भ मानों देख रहा है उसे किंचित भी चेष्टा नहीं है जैसे निर्विकल्प, वहां स्थिति बोधा श्याम ब्रह्मा श्यास हैं। उसी स्थिति में गमन शीलता और कर्त्तापन भी नहीं के समान है वहां समाधि व्यवहार भी समान हैं. वही शांत पद है जहां मन इत्यादि सहित विचार भी अस्त है। वही अनुभव मात्र सबों का सिद्धांत है जो तुम जैसे को अति सुगम है किन्तु अनुभव बिना कठिन प्रतीत होता है। अतः है

प्रिय शरीर यदि तिल मात्र काट डालो अथवा काष्ठ पाषाण के समान बना डालो तब भी बोध बिना जड़ हैं जैसे खम्भ परन्तु एक तत्व विचार का आश्रय होतेही अनायास खम्भ इत्यादि सब मिथ्या बन जाते हैं, जिससे तत्व वेत्ता सर्व श्रेय और वही तत्वदर्शी हैं।

ॐ ५४-हे गुरु जो जैसे बड़वाग्नि द्वारा तीनों भेद का जल उदय अस्त होता रहता है वैसे संधि द्वारा तीनो कांड उदय अस्त होते रहते हैं, परन्तु बड़वाग्नि और संधि अपने स्वभाव से असंग रूप से स्थिति हैं। जैसे कर्म का समर्पण अपने मन द्वारा तीन भेद से प्रतीत होता है किन्तु संधि जो आत्मा है सो तीनों भेद से निस्पृहा और असंग हैं, भ्रम से अन्यथा प्रतीत होता है जैसे संधि और आत्मा में भ्रम होता है। परन्तु जैसे युद्ध में कवच रहने से निर्भय और न रहने से भयभीत रहता है वैसे अर्पण से सनमुख और न करने से विमुख प्रतीत करता है इसे निश्चित करता हूँ। परन्तु सो कल्कि जी कैसे होते हैं बोध निमित्त इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जैसे ब्रह्मा से विष्णु और विष्णु से शिव अनुभूत हैं, वैसे ब्रह्म यशा का पुत्र विष्णु यशा और विष्णु यशा का पुत्र कल्कि जी हैं इसी प्रकार होते रहते हैं। यद्यपि उस पक्ष में समाजी सो तीन हैं उन्हीं तीन से सब नाड़ियों की पूर्ती होती है और इस पक्ष में नाड़ियों के समान समाजी बहुत हैं जिससे सब समाजियों करके नीचे ऊपर की सब नाड़ियों की

पूर्ती होती है, अतः जैसे उस पक्ष में आदि अन्त सहित नाड़ियों के सहायता से विष्णु बनते हैं, वैसे इस पक्ष में आदि अन्त सहित अपने नाड़ियों के सहायता से विष्णु यशा होते हैं, मानों मुनि का गुण-संत का गुण-अवद्ध का गुण-इन तीनों के एकता से विष्णु और विष्णु यशा में समान से समानता होती है न कि अन्य स्थान के समान सुगम से कल्कि जी प्रगट होने योग्य हैं। अतः जैसे भ्रम से आत्मा और हरि में भेद होता है वैसे चेष्टा से स्त्री पुरुष में होता है, जिससे विष्णु यशा की स्त्री सुमति नाम से होती हैं तिनके गर्भ से कल्कि जी होते हैं। वैसे बृहद्रथ की स्त्री कौमुदी नाम से होती हैं तिनके गर्भ से श्री स्वरूप पद्मा प्रगट होती हैं। जैसे ज्ञान के प्रति शुभेच्छा और प्राण के प्रति सुमति, इसी भांति सबों के प्रति होने योग्य हैं किन्तु इस स्वभाव विना विपरीत होता है जैसे चेष्टा से चल और चेष्टा विना अचल होता है। मानो इसी कारण श्री हरि के समान चित्त प्राण में भेद है जिससे विष्णु यशा के प्रति कमलिनी के समान शुमति और बृहद्रथ के प्रति कुमुदनी के समान कौमुदी हैं। यथार्थ में जैसे आत्म चिंता प्राण चिंता एक हैं वैसे शुमति और शुभेच्छा तथा प्राण अपान एक हैं। ऐसे ही जहां एकही गुण रहित आत्मा और एकही गुण रूप अनात्मा निश्चित है उसे सर्वत्र निर्भयता प्रतीत होती है। इसी के बोध निमित्त कितने एक सोऽहं-ओंकार तथा आदि अन्त का स्मरण करते हैं यथार्थ में मन वचन शरीर का सब कार्य आत्मा के

प्रति समान है, वैसे ही प्रत्येक भिन्नता का भेद जो अनात्मा है सो सब उस आत्मा के प्रति एकही अभेद है।

ॐ प्र० ५५-हे गुरु जी ब्रह्मा से चींटी परयंत इच्छा से उदय अनिच्छा से अस्त हैं, जैसे संधि विषें अचल अन्यत्र से चल होता है। परन्तु प्रत्येक समाजियों का मार्ग बहत्तर सहस्त्र नाडी रूप हैं उसमे नीच ऊँच की नाड़ी कैसे कौन हैं इसे भी कृपा सहित कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय प्रथम तुम्हें बोध दृष्टि धारण करने योग्य है। अर्थात् वही कृत्य अबोध को हँसने निमित्त है और वही ज्ञानी को बोध निमित्त है, जैसे गीदड़-सूर्पणखा-नेउला इत्यादि अनुभूत हैं। तथा अज्ञानी अपने नाशिका को देखते रहते हैं और ज्ञानी इस जड़ता से परे उस आत्मा को मन से निश्चय करते हैं न कि नेत्र से, तथा अज्ञानी अपना दोनों श्रवण बंद करके मन को मृग के समान नाद शब्द में उन्मत्त करते हैं परन्तु ज्ञानी जन विचार से सार वस्तु को सिद्ध करते हैं। जैसे जड़ता का मूल आकाश और वायु को सब ज्ञानी मानते हैं इसे राम भी निश्चित किये हैं, अर्थात् आकाश रूप श्रवण वायु रूप नासिका है, दोनों से परे सो आत्म पद सिद्ध है। सो आकाश वायु बड़े बड़े चतुरों को आच्छादन किये रहता है तब सूर्पणखा को भ्रम होने में आश्चर्य क्या है, किन्तु नासिका श्रवण निपात होनेही जिस प्रयोजन से राम के प्रति गई थी सो सिद्ध है, परन्तु विलम्ब के कारण इसका परिज्ञान उसे नहीं है जैसे सिद्धों का

अनुमान अज्ञानी के समझ में नहीं आता है। ऐसेही उस नाड़ियों के मार्ग में नीच ऊच की स्थिति है, जैसे भक्ति का रूप मन्दो-दरी उसे विचार रूप पराशर का सम्बन्ध होते ही गंगा के स्थान हैं। तथा माया रूप जानकी भी रावण के प्रति और सूर्पणखा राम के प्रति-परन्तु जैसे वहां शुद्ध जानकी दोनों ओर का नाटक चतुरता से देख रही हैं वैसे गुण रहित संधि तीनों कोष्ठ का नाटक देखने में महा चतुर है। ऐसेही तुम्हें भी अनुभव करने योग्य है, जैसे माया रूप जानकी सो रुक्मिणी और रावण सो शिशुपाल- मानों यह रावण जब जय विजय से थे तब यह वहां जया विजया से थीं, अतः नृत्य के कारण निवारण से इसके पश्चात् दोनों से एकता होती है, जैसे राम के पश्चात् सूर्पणखा और कृष्ण से सिद्ध है। ऐसेही पृथक एकत्र समानता विषमता होती रहती है, जैसे कृष्ण के राशलीला में प्रत्येक के प्रति प्रत्येक से दो दो बार का संग असंग है, जिससे ऊपर के कोष्ठ में तीनों के स्थान तीनों होते हैं, वैसे नीचे के दोनों कोष्ठ में होते रहते हैं, मानो स्थान के समान बहत्तर सहस्त्र नाड़ी और पथिक के समान प्राण अपान के समाजी सब हैं। उस नाड़ियों के अन्तर गत नीच से नीच और ऊँच से ऊँच का रूप है, जैसे ऊपर ब्रह्मरंध्र विषें प्राण और नीचे पाताल विषें अपान-दोनों को समान करके मध्य रूप भक्ति विचार के पीछे पीछे चलती है, जैसे भगीरथ के पीछे गंगा प्रतीत हैं। अतः हे प्रिय जैसे सत् असत् का विचार करते हो वैसे मुक्त होने की चेष्टा धर्म और

अमुक्त की चेष्टा अधर्म इसे प्रथम अचल करो। यही ज्ञानी जनों का धर्म रूपी यन्त्र है इसी को अचल रखते हैं। यदि तुम्हें कोई बलात्कार से अन्यत्र कहीं ले जाता है वहां तुम स्वधर्म में निर्दोष हो किन्तु अन्यत्र की चेष्टा दूषित है। अतः पथिक अनेक आते जाते हैं परन्तु स्थान सर्व काल जैसे का तैसे रहता है। जिससे पथिक के समान अनेक ब्रह्मा हरि शिव उदय अस्त होते रहते हैं, वैसे मध्य और नीचे के कोष्ट में होते रहते हैं, जैसे जल का तरंग कौन प्रथम का कौन अभी का है यह कहना कठिन है। अर्थात जहां ज्ञान द्वारा आत्मा के प्रति मन प्राण इत्यादि मृतक के समान हैं वहां सो पुनः करके कदापि नहीं बनना है जैसे आकाश के समान आत्मा का जन्म मरण आना जाना कदापि नहीं बनता है। किन्तु आत्मा के चमत्कार से मन द्वारा चेष्टा होती है, जन्म के पश्चात् अथवा मरण के पश्चात् हो चेष्टाही अनर्थ का मूल है। सो यदि अपने तथा भक्ति के वशीभूत से उदय की चेष्टा होती है वहा नाड़ियों की गति अनायास बन जाती है। जैसे अस्त बिना उदय से अर्जुन को रावण-हनुमान को महा रावण-कर्ण को विभीषण-प्रह्लाद को मेघनाद-युधिष्ठिर को हरिश्चन्द्र-द्रोणाचार्य को विश्वामित्र-होने में किंचित् भी भ्रम नहीं है। अर्थात् आदि में गणेश मध्य में सूर्य अन्त में शेष-इमों के अन्तर गत सुर असुर नोच ऊँच नाड़ियों की स्थिति है मानों सबों के आने जाने का स्थान है। जैसे खटमुख यदि अपने स्थान से उस अन्तिम नाड़ी शेष के रूप तक चलें तब इस प्राण के

नाड़ी का रूप वही छत्तीस सहस्त्र बार जन्म मरण की व्यवस्था हैं, वैसेही वहां से नीचे गणेश के रूप तक छत्तीस सहस्त्र नाड़ी रूप जन्म मरण की व्यवस्था इस अपान गति में भी है, जिससे बहत्तर सहस्त्र के अन्तरगत में आदि गणेश मध्य सूर्य अन्त शेष हैं। अतः जैसे हनुमान के साथ बन्दर गिरि गुहा में प्रवेश करते प्रतीत हैं, वैसे भक्ति के साथ विराग युक्त षटमुख के स्थान जाना बनता है जिससे वहां जाने निमित्त प्रथम की ज्ञान भूमिका शुभेच्छा हैं, ऐसेही अस्त विना उदय से सर्वत्र निश्चित है। यद्यपि वेद का रूप सनकादिक सो विष्णु द्वारा षटमुख के रूप में गिराये जाने अनुभूत हैं, जैसे उस सनकादिक द्वारा जय विजय प्रतीत हैं, सो सब अपने स्वधर्म में चेष्टा विना निर्दोष हैं। अतः हे प्रिय तुम्हारा परम कल्याण हो किन्तु जन्म और मरण दोनों के चेष्टा से रहित बनो, जैसे उदय सो अस्त से वर्जित और अस्त सो उदय से वर्जित है, शांत स्वरूप आत्मा के प्रति स्थिति रहो। अर्थात सो आत्मा चेतन होते हुये सर्वत्र सबों के प्रति होते हुए शांत रूप से अचल है, परन्तु अहं रूप तुम तथा मन इन्द्रिय सहित जड़ और मिथ्या होते हुए चंचल और चल हो-इससे बढ़ कर अधिक आश्चर्य क्या है-इसी का नाम भ्रम माया अविद्या उपाधि है, जिसे देख कर विवेकी जन हँसते हैं, अतः तुम जैसे जड़ के समान हो वैसे ठूंठ काठ के समान चेष्टा विना अचल रहो। यदि कहो सो चेतन में ही हूँ तब तो अधिक श्रेय है, किन्तु जैसे मन्दराचल वासुकिनाग कच्छप

इत्यादि सुर असुर अपने अपने स्थान चले जाने पर क्षीर सागर शांत रूप से स्थिति होता भया, वैसे मन बुद्धि इन्द्रियादिक जिस पंचभूत से आये हैं उन्हें उस विषें नियुक्त करके शांत रूप से अचल रहो। परन्तु सत का भाव और असत का अभाव दोनों पक्ष में सिद्ध है, जैसे राम रावण का नाटक आत्मा और अहंकार के बोध निमित्त निश्चित है।

ॐ प्र० ५६-हे गुरु जीआर के युक्ति वाक्य मानों दोनों को दोनों ओर से बांध कर सिद्ध कर देते हैं-जैसे वाल्मीक के प्रति सात महा ऋषियों के युक्ति वाक्य अनुभूत हैं। इस करके जड़ चेतन दोनों अचल होनेही योग्य हैं-किन्तु भ्रम से दोनों ओर चंचलता की प्रतीत होती है-जैसे शांति अशांति का मूल वायु और मन हैं भ्रम बिना दोनों अचल हैं। परन्तु जैसे तीनों प्रकृति एक से तीनों कोष्ट एक हैं-वैसे तीनों को पृथक करके सुगम से कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय तुम्हारे जैसे बुद्धि की तीक्ष्णता प्रशंसा के योग्य है। अतः नीचे का कोष्ट स्थूल प्रकृति है जैसे क्ष. मध्य का सूक्ष्म प्रकृति है जैसे त्र, ऊपर का कोष्ट चेतन प्रकृति है जैसे ज्ञ। परन्तु जड़ प्रकृति के कारण नीचे का दोनों कोष्ट एक हैं, जिसमें अपान की अन्तिम गति नीचे पाताल तक और प्राण की अन्तिम गति ऊपर ब्रह्म रंध्र तक है-मानों इसी के बोध निमित्त विराट जी के दो चरण में जड़ प्रकृति समाप्त है। जैसे ज्ञान द्वारा सूक्ष्म पुर्यष्टक और स्थूल शरीर दोनों जड़ भान से एक

है-किन्तु 'ज्ञ' के समान जीव है। अतः जीव जो ज्ञान स्वरूप चेतन है और जड़ प्रकृति अचेतन जो अज्ञान स्वरूप है इस दोनों की एकता वही चेतन प्रकृति का रूप है-मानों इस विना कार्य नहीं-उस विना चेतनता नहीं है। यही जड़ चेतन की ग्रन्थि है इसे जाने विना अनेक जन्म में पृथक नहीं होती है, अनुभव होतेही क्षण मात्र में पृथक हैं, यही जीव जगत की एकता है, यही गुण अगुण की समानता भी है, अर्थात् आकाश जो सूक्ष्म और चारों भूत स्थूल-यही दोनों जड़ प्रकृति हैं, इसी जड़ स्वरूप में जड़ स्वरूप का तीन गुण है -अर्थात चेष्टा विना शून्य आकाश वही सत्व गुण की स्थिति है-वायु तेज रजो गुण-जल जड़ तमोगुण है। अतः उसे जड़ता रहित जीव कहो अथवा गुण रहित जीव कहो, जैसे उस जीव को शिव कहो अथवा आत्मा ब्रह्म कहो, किन्तु जानना जो ज्ञान है इस बिना भ्रम भेद बना रहता है, जैसे इसी तीन गुण में चार भेद होकर ब्रह्मा हरि शिव कृष्ण हैं। तथा सत्व गुण से ब्राह्मण-सत्वरज से क्षत्रीय-रजतम से वैश्य-तम से शूद्र। यथार्थ में नीचे से ऊपर तक एकही गुण रहित आत्मा है और एकही सो गुण रूप की प्रकृति है। इसी के बोध निमित्त प्रथम सो जड़ भक्ति अपने अधिष्ठाना आकाश की ओर चलती है-जो समानता रूप सत्व गुण की स्थिति है, जैसे गंगा के आश्रय से साधु सन तीर तिर्थ चलते हैं, सो भी वहां जाते हैं अर्थात् जैसे पट्गुरु-पटशास्त्र-पटचक्र- पट विचार-कुंभक और कुंभा-सात चक्र सात पुरी समान हैं-जैसे गंगा भक्ति

समान हैं। अतः जहां आकाश रूप अखंड ज्ञान अखंड विचार अखंड भक्ति अखंड प्रीति है, वहां इसे पाकर चेतन की ओर चलते हैं, जहां ईश्वरी सम्पदा है। अर्थात् अक्षय ज्ञान-पूर्ववत ज्ञान- तथा अंश के उदय अस्त की शक्ति, मानों अखंड और अक्षय की एकता वही ब्रह्माकाश है। इसी तन्मयता को समानता रूप संधि तथा स्वतंत्र भी कहा जाता है किन्तु गुण के प्रसंग को गुणातीत कहा जाता है, यही सर्वत्र सबों के प्रति सिद्धांत रूप से सिद्ध है। इसी चेतन के सम्बन्ध से आकाश रूप ब्रह्मा सबों के प्रति हैं मानों सबों को मुक्त करनेही निमित्त आने जाने प्रतीत होते हैं, परन्तु सो आकाश मोक्ष रूप है। वैसेही संधि रूप से हरि-जीव रूप से शिव सबों के प्रति निश्चित् है। यद्यपि गुण अगुण से तीनों समान हैं किन्तु शिव की स्थिति प्रधान और सुगम है, मानों भूल कर भी कोई अमुक्त नहीं रहता है जैसे अनहं होतेही मानो शिव रूपी महा पजावा हो गया। अतः हे प्रिय जैसे सूर्य के उदय से तीनों भेद की रात्रि अस्त होकर न जाने कहां चली जाती है वैसे नाम रूप से रहित जो आधा भाग शिव है उसके शिवाय अन्य जो आधा भाग है सो सब त्रिभेद सहित न जाने क्या हो जाता है, इसी अर्धाकार से ब्रह्माड भर मथ हैं। किन्तु जैसे सूर्य के होते हुए ओट होने से रात्रि की प्रतीत है वैसे सो शिव होते हुए ओट से नीचे का भाग रात्रि के समान अज्ञान है, जिससे नासिका के अग्र आत्मा का निश्चय मन से होतेही मानों सूर्य उदय हो गये, उस निश्चय

से विमुख होतेही मानों रात्रि आ गई, अतः तुम सवों के समान दोनों की चेष्टा न करो किन्तु रात्रि के चेष्टा विना दिन के चेष्टा से महान प्रशंसा है। परन्तु जैसे इस विषमता को समझ गया वैसे सो समानता भी निश्चित करने योग्य हैं जहां चद्रमा सूर्य दोनों अनुभूत हैं वैसे कार्य रूप अज्ञान विना संधि स्वरूप की स्थिति है वही ज्ञान भक्ति तथा कारण निश्कारण की प्रतीत है, जैसे पंचवाण सहित काम क्षय होने पर रती और प्रद्युम्न अनुभूत होते हैं। यही अमृत मय संधि स्वरूप आत्मा का निश्चय है जिसके प्रति मंथन और कंठ इस दोनों भेद का अमृत तुच्छ प्रतीत होता है अर्थात् सो आत्म स्वरूप इन दोनों का अधिष्ठाता है, इसी दृढ़ निश्चय से शिव जी चिन्ता से रहित हैं कि कब ब्रह्मा हरि के स्थान जाते हैं और सो हरि कब ब्रह्मा के स्थान जाते हैं, जैसे कब ज्वार कब भाटा है यह चिन्ता समुद्र को भी नहीं है किन्तु अपने आत्म स्वरूप के निश्चय से। वैसे तुम्हारे भी कब अपान के स्थान प्राण और कब प्राण के स्थान अपान होता है इसकी चिन्ता आत्म स्वरूप के निश्चय से कदापि न होगी वहां स्वतः प्राण अपान की एकता हो जाती है। इसी के बोध निमित्त धर्म के नाम से अनेक मत अनेक सम्प्रदाय अनेक भेष अनेक कल्पना का मार्ग होता रहता है, परन्तु विचार से सबों का सिद्धांत आत्माही सिद्ध है। 'सर्व धर्मान् परि त्यज्य मामेकं शरणं व्रज, यही भावार्थ है। इसी के बोध विना अन्यथा भ्रमण करते हैं जैसे नाड़ियों में, अतः आत्मा में अचल रहो।

ॐ ५७-हे गुरु जी मानो उत्पन्न अविद्या के कारण हमको उपन्न प्रश्न करना पड़ा, सो विद्या अविद्या दोनों को एकही समाधान से स्थगित करने में समर्थ हैं, जो आपही जैसे महात्मा सिद्धांत और गुण स्वभाव को शिष्य विषैं अचल करते हैं। जिससे आत्मज के समान एकता प्रतीत होती है, जैसे एकता से एकही सूर्य हैं, किन्तु पृथक से चद्रमा सूर्य दोनों हैं, वैसे गुरु शिष्य और संधि स्वरूप हैं। यद्यपि उत्तपति स्थान ब्रह्मा-प्रलय स्थान शिव-पालन स्थान हरि-जिससे हरि सबों का परमहित हैं। परन्तु आप जैसे गुरु उनसे भी अधिक हित हैं, जिसे निश्चित करता हूँ, किन्तु सहायक संगी सधु जन कहे जाते हैं। यदि ऐसे महा गुरु कहीं अन्यत्र हों- उनकी उपासना कैसे होने योग्य है इसे भी कृपा सहित कहिये।

ॐ उत्तर-हे महा प्रिय जैसे युक्ति और सिद्धांत को ग्रहण करना वही महा श्रेय है-वैसे गुरु कहीं हों मन से उनके चरण का स्मरण- वचन से धन्यवाद सिर से नमस्कार-यही महापूजा है, जैसे आत्मा की होती है, सो दोनों समान हैं जैसे आत्मा और हरि तथा जीव और शिव किन्तु गुण करके भेद है-गुण रहित होतेही एकही सिद्ध हैं। जैसे इस अध्यात्म के संग बिना अन्यथा और संग से दुर्जन भी साधु होने योग्य है जिससे अध्यात्मही महा साधु और यही परम संगी साथी है, इस बिना कैसे कौन हो सकता है इसे अनुभव करने योग्य है।

प्रार्थना-हे महा गुरु अनन्त नमस्कार हैं- श्री गुरवेनमः

चेतावनी:-

आदरणीय श्री गुरु की चेतावनी निश्चित करने योग्य है, अर्थात् तिलक रूप राजा बिना प्रजाही प्रजा का लुटेरू बन जाते हैं, सो तिलक रूप राजा आत्मा है, पंच भौतिक रूप ब्रह्माड सब प्रजा हैं, उस राजा के प्रतीत बिना विपरीत होनेही योग्य है इसका उपाय अध्यात्म है इस बिना अनात्म भ्रमिष्ट करके असाधु अधर्मी बना देता है जैसे युद्धस्थल में अर्जुन को, इस कारण कृष्ण ने अध्यात्म का उपदेश करके साधु रूप धर्म में युक्त किये, अर्थात् अध्यात्मही महा साधु रूप धर्म है और अनात्म महा असाधु रूप अधर्म है, इसी के सुधार निमित्त महा पुरुषों आगमन होता है इस करके वही महा पुरुष अनेक यज्ञों का करता हैं। जैसे विचार शील वर्ण और आश्रम से युक्त रहते हैं किन्तु विचार बिना कुयोगी अयुक्त रहते हैं, यद्यपि सम रूप भक्ति विषें असंग प्रतीत होता है परन्तु विचार शील वहां भी युक्त करते हैं जिससे भक्ति की स्थिरता सब में सर्वत्र है वैसे भक्ति में भी निश्चित है। अतः उस साधु भेष में तुलसी दास भी सन्यास आश्रम से थे जैसे चेष्टा से संग और चेष्टा बिना असंग है, वैसे ही विचार किये ब्रह्मचर्य, गारहस्त-बान-प्रस्त-इन तीनों से असंग हूँ अतः सन्यास से युक्त रहना उचित है। अर्थात् सम और विराग से अनायास उस साधु भेष में बन जाता है जिससे सबों को चेतावनी देते हैं कि वर्ण और आश्रम जो वेद पथ हैं यह कुयोगियों से प्रतिकूल होना है जैसे

विराग विना सन्यास। वैसेही ग्रहण जो गृहाश्रम-त्याग जो सन्यास दोनों आनायास भक्ति विषें मिल जाते हैं जैसे गंगा विषें यमुना सरस्वती अनुभूत हैं। इसी का भावार्थ गीता में है-तस्मात् योगी भवार्जुन। मानों पचास दल पचास अक्षर यमुना समान कर्म हैं- इसका निवारण सरस्वती के समान ज्ञान है-दोनों को सम करना गंगा के समान भक्ति है-तीनों की एकता वही योगारूढ़ है, वही शत पुस्ति का पवित्र कारक है, इसी विना कल्पवृक्ष चारही फल का अधिकारी है जैसे यत्न विना अयत्न। यद्यपि देवतों के अधिकार में होता तथा असुरों के परन्तु अपने स्वभावही से रहता है जैसे ज्ञान। वही जब नाड़ी द्वारा अपने विष्णुयशा के रूप में जाता है तब हरि का मैं हरि मेरे इस नीचे ऊपर सहित सर्वत्र का अधिकारी होता है जैसे राम जहां असमर्थ प्रतीत हैं वहां भी हनुमान समर्थ हैं। अतः बहत्तर सहस्त्र नाड़ी जो स्थान के समान हैं उस विषें नीच ऊच सहित पथिक के समान कल्पवृक्ष और विष्णुयशा एक कोष्ठ में एक हैं किन्तु ऊपर का कोष्ठ सो इसका अधिष्ठाता महा कल्पवृक्ष है मानों हरि रूप कृष्ण। परन्तु जैसे सो इसे अपने अंगन में रखने को समर्थ हैं वैसे यह भी उन्हें रखने में समर्थ है जिससे विष्णु और विष्णुयशा से समानता है। जैसे अखंड ज्ञान अखंड विचार अखंड भक्ति अखंड प्रीति समान हैं, परन्तु अन्त में जो प्रीति है इस विना सर्वत्र शून्य है जैसे संधि विना असंधि का समूह। यद्यपि राग से प्रीति विराग से

अप्रीति सर्वत्र निश्चित है, किन्तु आत्मा से प्रीति अनयत्र से अप्रीति यही सवों का सिद्धात है, इसी स्थिति में विचार जब देखता है हरि हमारे पुत्र होने को उद्यत हैं वहां सो आदर निरादर के चेष्टा विना आत्मा में सावधान रहता है न कि अज्ञानी के समान आसक्त होता है, अर्थात सो भी चेष्टा विना योग युक्त से प्राप्त होते हैं न की चेष्टा युक्त कुयोग से, अतः यहां भी आत्मा सिद्ध है। यद्यपि सूर्य से आत्मा का प्रमाण है जिससे अबोध विषें प्रतीत होता कि सूर्य के समान आत्मा कही एक स्थान से प्रकाश करता है, परन्तु बोध विषें आकाश के समान सर्वत्र है, यही बोध को सुगम और समीप है किन्तु अबोध को दूर और कठिन है। मानो बोध विषें आत्मा का चमत्कार जो मन इत्यादि में होता है सो सत् असत् दोनों पक्ष अचंचल है किन्तु अबोध विषें चंचल है, इसका उपाय अध्यात्म का मनन और आत्मा का शरण- इसी का भावार्थ है ईश्वरः सर्व भूतानां- तमेव शरणं गच्छ। अतः मन इत्यादि मिथ्या होतेही ब्रह्मांड मिथ्या प्रतीत होता है, उसे अक्षय स्वभाव की प्रीति प्रतीत अनुभूत होती है इसी का भावार्थ है- मद्भक्ति लभते पराम्। जैसे स्वप्न जो देखता उसी को भान होता- भ्रम विना दृश्य विषें नृत्य इत्यादि जड़ भक्ति है। अतः आत्म बोध से नाड़ियों का मार्ग अनभूत होता है जैसे जाना हुआ मार्ग अपने स्थान से। उन नाड़ियों में जाने की चेष्टा कदापि नहीं होती-जैसे जाने हुए गड्ढा में गिरने नहीं बनता है, यही विचार युक्त बुद्धि की

स्थिरता जैसे आत्मा सर्वस्व है। यद्यपि गुण रूप सगुण-गुण रहित निर्गुण-दोनों पक्ष समान सब कहते हैं, परन्तु बन्धन अविचार-निर्बन्धन विचार है-एक से जगत उदय एक से शांत है, जैसे रावण विषें सन्यास भेष होतेही असुर स्वभाव अस्त है, अतः विचार विना अहंकार नाड़ियों का विस्तार कर देता है जैसे रावण और शिव से अनुभूत है, अर्थात् तीनों ब्रह्मांड का महेश्वर हैं किन्तु त्रिभेद के समान भेद है जैसे बगलाधव-लोमश काकभुशुन्ड-तथा खर दूषण त्रिशरा-चन्द्रमा सूर्य अग्नि, तीनों त्रिभेद में तीनों गुण होते हुए समानता है। जिससे जय विजय को तीन जन्म असुर योनि का शाप है जैसे मुनि संत अवद्ध इन तीनों का तीन रूप है, कहीं एकही जन्म में उदय अस्त है, जैसे कहीं मुनि संत अवद्ध का तीनों रूप एकत्र है। जो अबोध विषें एक ओर अज्ञान-एक ओर विज्ञान प्रतीत होता है, परन्तु बोध विषें अज्ञानही विज्ञान और विज्ञानही अज्ञान होता है किन्तु ज्ञान सर्व काल शांत स्वरूप है। तथा यद्यपि आठ योगिनी विद्या रूप- प्रति एक के सात सात सखी सो छप्पन अविद्या रूप-दोनों चौंसठ। शिव और विवेकियों के प्रति सर्वदा योग रूप से रहती हैं न कि कुयोग से, परन्तु अपना प्रभाव बताने निमित्त उलटा मार्ग भैरव जी की पूजा करके पार्वती को मार भोजन के रूप में शिव के आगे रख दीं, शिव की सर्वज्ञता समझ पार्वती को जीवित कर शिव के साथ विवाहित करके शिव को प्रसन्न कीं। इस कारण दूसरे कल्प में कृष्ण और राधिका से

वियोग किन्तु रुक्मिणी इत्यादि आठों भोग रूप से युक्त भईं, अतः छप्पन करोड़ वहां भी अनुभूत है। मानों राधिका के प्रसन्न हेतु दूसरे कल्प में कल्कि जी की स्त्री जो पद्मा हैं उनकी प्रिय सखी होती भईं। विमला-मालिनी-लोला-कमला-कामकन्दला-विलासिनी-चारुमती-कुमुदे त्यष्ट नायिका। किन्तु नाम रूप का भेद है। उसी स्थान पद्मा के स्वयम्बर में आये हुए राजा सब स्त्री भाव को प्राप्त भये- दोनों पक्ष समान हैं जैसे आदि स्थान है। उसी सखित्व भाव में रुक्मिणी और शिशुपाल की समानता है, मानों जहां से वियोग वही संयोग है, जैसे संधि से उदय संधि विषें शांत होता है। शांत विना तीनों कोष्ठ भ्रमण शील होता है जैसे घन्टा मिनट सेकेन्ड प्रतीत है। अतः जिस प्रकार अहो रात्रादि के पश्चात् पुरुष भक्त पुरुषाकार को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार पद्मा के स्वयम्बर में आये हुए राजा जो स्त्री भाव को प्राप्त भये सो कल्कि द्वारा पुरुषाकार प्राप्त होते भये। परन्तु जब कल्कि जी से विदा होकर घर की ओर चले सो कैसे अनुभूत होते हैं जैसे ब्रह्मधाम से अपान वायु के समान नीचे को गिरना प्रतीत होता है। तथा पथिक जैसे इस धाम से उस धाम को जाते हैं। तथा कल्कि जी का शुक सो हनुमान और कल्कि जी का ज्येष्ठ भ्राता कवि सो भरथ और दूसरे भ्राता प्राज्ञ सो लक्ष्मण- तीसरे सुमंतक सो शत्रुहन- चौथे कल्कि सो राम-पद्मा सो जानकी होते प्रतीत हैं, वैसे माया रूप जानकी काम रूप रावण से रती और काम के रूप में एकता होवी है।

अर्थात् यद्यपि गुण रहित आत्मा के प्रति तीनों कोष्ट समान हैं जिससे चेतन सो आत्मा देह सो जड़ है दोनों के सम्बन्ध से चेतन प्रकृति का रूप सब हैं, किन्तु इस गुण रूप प्रकृतिही में तीन कोष्ट का भेद है, अतः ऊपर का कोष्ट अधिष्ठाता और नीचे का दोनों कोष्ट जड़ प्रकृति में है, इसी जड़ प्रकृति में जय विजय जया विजया रावण हनुमान रुक्मिणी इत्यादि सब-नृत्यकार के समान नीचे ऊपर होते रहते हैं। यद्यपि गुण अगुण की समानता भी है जैसे दो भेद से मदारी, परन्तु गुण रहित की स्थिति सुख दुख से रहित अव्यय पद स्वतंत्र है-किन्तु गुण की स्थिति सुख दुख से युक्त व्यय पद परतंत्र है। इसी सार असार के निर्णय को कवि कहा जाता है जैसे कवी नां मुशना कविः। यद्यपि क्रया शक्ति से उलट पलट करने को सिद्ध कहा जाता है, परन्तु सत् सो असत् और असत् सो सत् न हो वही निर्मल विचार ज्ञान स्वरूप है। यद्यिप क्रया शक्ति ज्ञान शक्ति दोनों समान हैं जैसे सगुण और निर्गुण किन्तु सिद्धांत रूप संधि विषैं समान हैं- अतः यहां भी सिद्धांत रूप आत्मा है जैसे ना उदय ना अस्त। इसी के निश्चय बिना उदय अस्त होता रहता है, अर्थात गुण रूप चल-गुण रहित अचल- गुण रूप अहंकार- गुण रहित आत्मा- गुण रूप अविचार- गुण रहित विचार- एक बद्ध- एक अबद्ध। यद्यपि दोनों पक्ष समान से गुण योग की एकता है, जैसे गुण रूप-देह सो गृहाश्रम- गुण रहित आत्मा सो सन्यास-दोनों के युक्त

से अहंकार गृहस्त है, जिससे राहु और अहंकार दोनों ओर पूज्य हैं- परन्तु गुण रूप असुर कुल से दोनों हैं न कि गुण रहित देव कुल से। अतः भेद रूप ज्ञान- भेद रूप भक्ति दोनों का सिद्धांत एक- ना उदय ना अस्त वही महा अवद्ध स्वरूप आत्म पद है इसी का नाम अभेद अद्वैत है। परन्तु जिसे सुख दुख रुचता है सो उदय अस्त होता है जिसे नहीं रुचता है सो दोनों से रहित आत्मा के प्रति शांत होता है, अतः दोनों विपें सम दोनों महा घोर हैं जैसे आत्मा के बोध से समाधि व्यवहार समान है परन्तु जैसे आत्म बोध से दोनों समान हैं वैसे आत्मा से रुचि अन्यत्र से अरुचि इस निर्वासनिक से दोनों महावीर बनते हैं। इसी कारण सुर असुर इत्यादि सबों करके आत्मा के प्रति वासना का बलिदान महा पूजा है न कि अनेक अन्य का इसी का नाम निश्पृहा सर्व त्याग है, जिसे अनुभव करने योग्य है। श्री गुरवे नमः

लेखक श्री शम्भूनाथ-नीवी दूबे (गोरखपुर)

श्री सम्वत् २०१६ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को पूर्ण भया।

इस के सम्पादक श्री महाशय- अक्षर मात्रा भाषा परिवर्तन करें अति श्रेष्ठ है, किन्तु भावार्थ की त्रुटी कदाचित न हो।

उलटा को सीधा साधु जान कर
किन्तु सीधा को उलटा अर्थात्
अतः यह पुस्तक मुमुक्षु भवन
प्राप्त करता है।